योगविद्या

वर्ष 13 अंक 12
दिसम्बर 2024

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2024

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सेवा का उद्देश्य क्या है? दीन-दरिद्र और पीड़ित मानवता की सेवा, समाज और देश की सेवा किसलिए करते हो? इसलिए कि सेवा के द्वारा तुम्हारा हृदय शुद्ध होता है। अहंभाव, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता की भावना और इस प्रकार की सारी कुत्सित भावनाओं का नाश होता है तथा नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों का विकास होता है। सेवा से स्वार्थ-भावना मिटती है, द्वैत-भावना क्षीण होती है, जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल और उदार बनता है, एकता का भान होने लगता है। परिणामस्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने लगता है। तभी असीम आनन्द प्राप्त होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 13 अंक 12 दिसम्बर 2024
(प्रकाशन का 62 वाँ वर्ष)

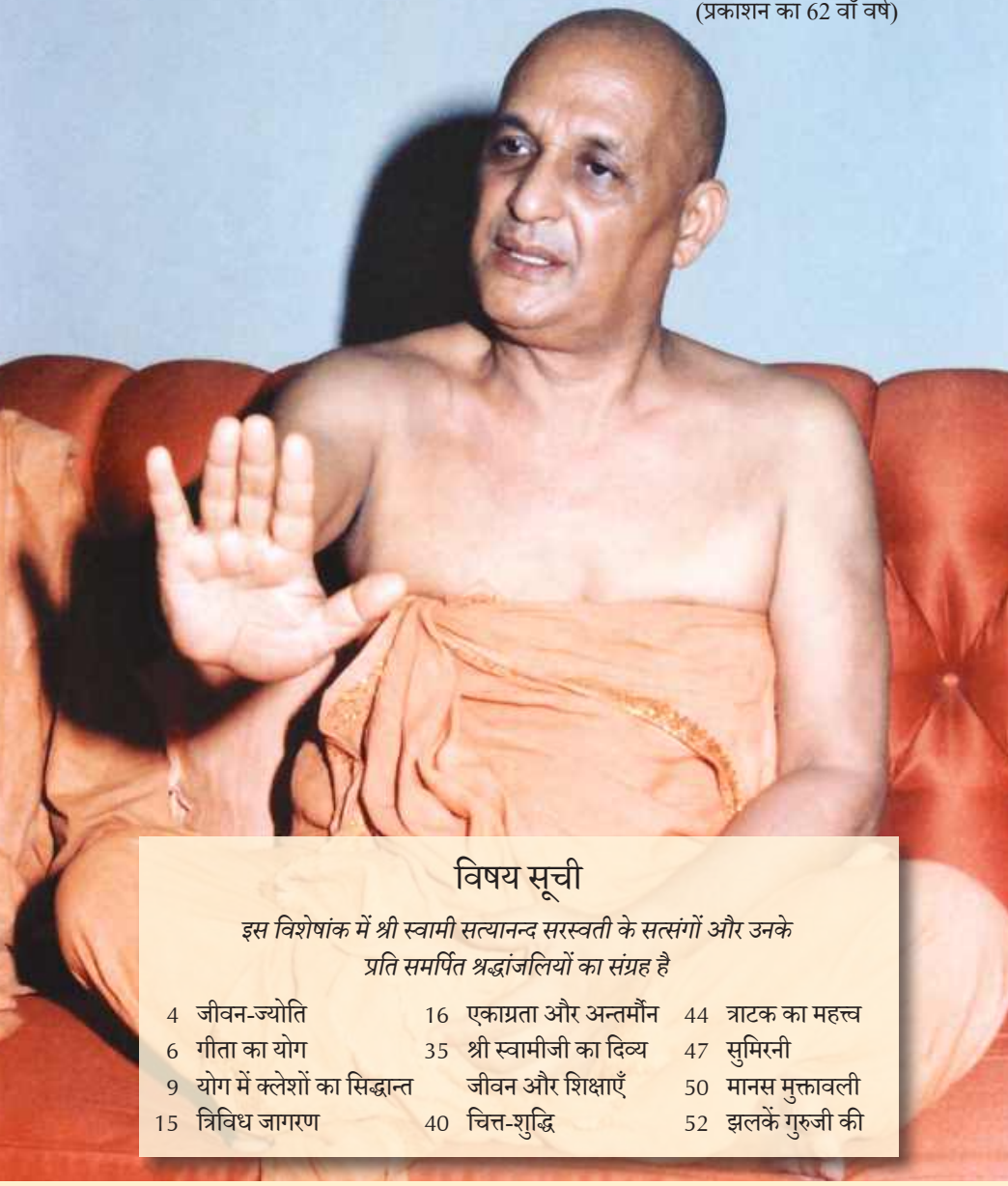

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 जीवन-ज्योति
6 गीता का योग
9 योग में क्लेशों का सिद्धान्त
15 त्रिविध जागरण
16 एकाग्रता और अन्तर्मौन
35 श्री स्वामीजी का दिव्य जीवन और शिक्षाएँ
40 चित्त-शुद्धि
44 त्राटक का महत्त्व
47 सुमिरनी
50 मानस मुक्तावली
52 झलकें गुरुजी की

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

जीवन-ज्योति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्री स्वामी शिवानन्द जी की
महिमामयी शक्तिमयी लेखनी से –
विश्व-जीवन में ज्योति की किरणें
कलात्मक हो रही हैं,
जिन किरणों के प्रकाश में
मानव को पथ नहीं खोजना पड़ता,
किन्तु अंधकार में जागता है प्रकाश,
प्रकाश से अनहद-सृष्टि और विराट-विश्व –
तब सर्वत्र
मानव को प्रकाश ही प्रकाश दिखता है –
अपनी बाहु पसारे।
'जीवन ज्योति' में हम बालक जाते हैं,
जीवन पथ पर, स्वर्णिम तन धर –
अरण्यों, मरुस्थलों और गिरी शृंगों को,
कगारों, सागरों औ' भव जालों को पार कर,
बन कर विजयी –
विश्व विजय कर,
आत्म विजय कर,
परमार्थ के नित-अनुपम-पथ पर,
और सच्चिन्मय ब्रह्म की भावानुरूपता,
विश्व विभायत्ता में
क्लेश, दु:ख और मृत्यु को जला –
जग के मरघट पर ही नाच-नाच कर,
अन्त में अद्वैत-सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं –
शांति, मोक्ष और आनन्द-चिरन्तन भी॥

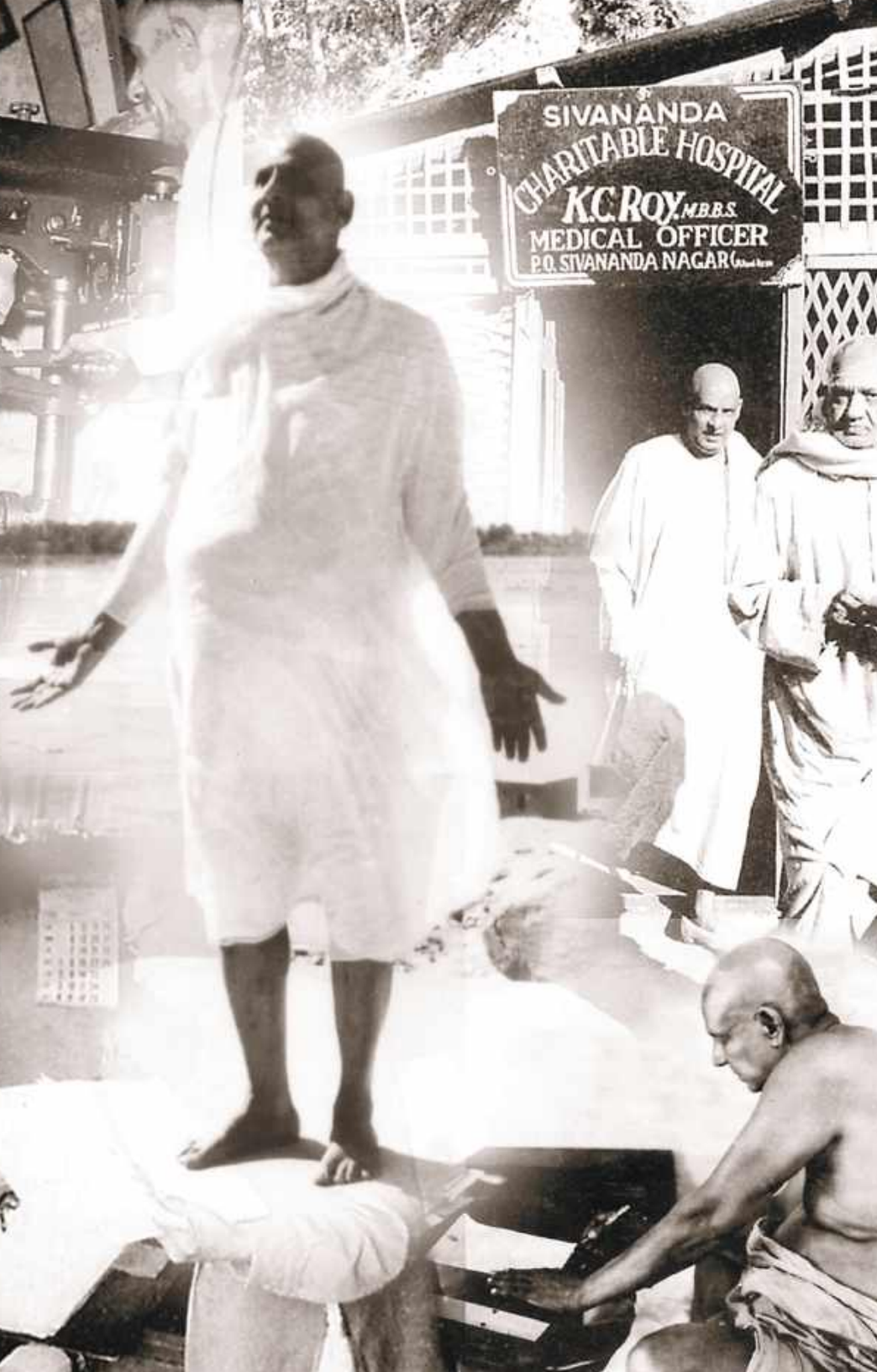
SIVANANDA
CHARITABLE HOSPITAL
K.C. ROY. M.B.B.S.
MEDICAL OFFICER
P.O. SIVANANDA NAGAR

गीता का योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भगवान श्रीकृष्ण साकार ब्रह्म के रूप थे। ईश्वर जब साकार होता है, तब अपनी सीमित शक्तियों के साथ वह प्रकट होता है, और उस शक्ति को कहते हैं योगमाया। भगवान श्रीकृष्ण योगमाया की शक्ति को लेकर, आज से लगभग साढ़े पाँच हजार साल पहले पैदा हुए थे। राम जी के बारे में बाद में बात करेंगे, क्योंकि राम जी तो त्रेता युग में पैदा हुए थे, जबकि कृष्ण जी तो हाल में पैदा हुए हैं। भगवान बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब – ये सब भी हाल में पैदा हुए हैं, लेकिन भगवान श्रीकृष्ण के बारे में बतलाना इसलिए जरूरी हो जाता है कि आज के युग में जो शिक्षा हम लोगों को चाहिए; जीवन, समाज, इतिहास और राजनीति का जो आधार आज हम लोगों को चाहिए अपने परिवार, दफ्तर, बैंक, बाजार, या संसद में, उसके लिए श्रीकृष्ण एक रास्ता बतलाते हैं।

श्रीकृष्ण इस युग के एक महान् गुरु हैं। वे कहते हैं, 'देखो, तुम एक बहुत बड़े नेता हो न, तुम ऐसे रहो। तुम एक बहुत बड़े विद्वान् हो, ऐसे रहो।' श्रीकृष्ण

ने अपने जीवन में सारे रोल, सारी भूमिकाएँ अदा की हैं। कोई रोल ऐसा नहीं जो उन्होंने छोड़ा हो। चोरी तक कर डाली, छोकरियों को भी छेड़ दिया। उन्होंने कहा, 'तुम कर्म करो, मगर इस तरह से करो', और उनकी इस शिक्षा का सबसे सुंदर उदाहरण और प्रतीक है – श्रीमद्भगवद्गीता।

अगर केवल भगवद्गीता को ही तुम ले लो, और कुछ मत लो, भगवान श्रीकृष्ण ने उसमें आज के जमाने की बीमारी का पता लगाया है। जो तुम अच्छा काम करते हो, बुरा काम करते हो, चोरी करते हो, डकैती करते हो, खून करते हो, पैसा कमाते हो, इन सब कर्मों के पीछे क्या कारण है? विषाद।

मनुष्य विषाद से मुक्त होने के लिए ही कर्म करता है। तुम दो-चार दिन सब काम छोड़कर देख लो क्या होता है तुमको। सब नीरस और बोझिल लगेगा। अगर एक-दो महीना तुम को काम न मिले या काम न करो या एकांत में रहो, किसी से बात तक नहीं करो, केवल खाओ, पियो और सो जाओ, तो क्या होगा? विषाद हो जाएगा। प्रकृति ने जीव को विषाद से, डिप्रेशन से मुक्त करने के लिए ही कर्म का निर्माण किया है। कर्म केवल मनुष्य के स्वास्थ्य का, जीवन का हेतु है। कोई इच्छा न हो, मोह न हो, ईर्ष्या न हो, प्रेम न हो, राग न हो, द्वेष न हो, वासना न हो, करुणा न हो, आदमी तो पागल हो जाएगा और रोज उसको गोली खानी पड़ेगी। और डॉक्टर लोगों की खूब आमदनी रहेगी! परन्तु कर्म भी अगर गलत ढंग से करोगे तो एक तरफ विषाद दूर तो हो जाएगा, लेकिन साथ ही उसका साइड-इफेक्ट दूसरा विषाद होगा। जैसे दवाई का साइड-इफेक्ट होता है न, वैसे ही कर्म का भी साइड-इफेक्ट होता है। कर्म का साइड-इफेक्ट क्या है? आसक्तिपूर्वक किए हुए कर्म, स्वार्थ के साथ किए हुए कर्म, अहंकार के साथ किए हुए कर्म, फल-आशा से बंधे हुए कर्म अन्ततोगत्वा विषाद में बदलते हैं। एक डिप्रेशन को दूर करने के लिए तुमने कर्म करना शुरू किया, दूसरी तरफ फिर डिप्रेशन हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस विषाद से मुक्त होने का एक ही उपाय है, और वह है योग। वह योग न तो पतंजलि का योग है, न स्वात्माराम का योग, न किसी अन्य का, वह योग है गीता का। श्रीमद्भगवद्गीता का योग मनुष्य को विषाद से मुक्त कर सकता है, और फिर आदमी चौबीस घण्टे, तीसों दिन, साल भर, जीवन भर काम कर सकता है। और जम करके काम कर सकता है। कर्म करके फल को प्राप्त भी कर सकता है, और फल को त्याग भी सकता है। उसको आशा भी मिल सकती है, निराशा भी मिल सकती है। उसको सुख

भी मिल सकता है, दुःख भी मिल सकता है। इसके लिए जो तरीका है, वह आपको गीता में देखने को मिलेगा।

भगवान श्रीकृष्ण का सबसे बड़ा अनुदान आज के युग में मनुष्य को कर्म करने की पद्धति सिखाना है। इसीलिए हम सब से कहा करते हैं कि गीता पर चिन्तन किया करो। गाँधीजी ने किया, लोकमान्य तिलक ने किया, अरविंद ने किया, शंकराचार्य ने किया, कितने लोगों ने गीता पर चिंतन किया है। और जिन्होंने गीता पर चिंतन किया उनको रास्ता मिला। गाँधीजी, अरविंद, शंकराचार्य, सबने गीता पर चिंतन किया, उनको रास्ता मिला। तुम भी चिंतन करो, तुमको भी रास्ता मिलेगा। क्यों नहीं मिलेगा? जरूर मिलेगा। अगर तुम रेलवे का टाइम-टेबल देखते हो, रेलगाड़ी का तो तुमको जरूर पता चलेगा। रेलवे का टाइम-टेबल देखने से जैसे तुमको गाड़ी का पता चलता है, उसी तरह से गीता पढ़ने से तुमको जीवन के टाइम-टेबल का पता चलेगा।

हमारे पूर्वज, हमारे ज्ञानी लोग, हमारे विद्वान् आचार्य लोग गीता पर जो इतना जोर दे रहे हैं, वह किसी सम्प्रदाय के हेतु नहीं दे रहे हैं। हम लोगों को कोई सम्प्रदाय बढ़ाना नहीं है। सारी दुनिया को हिन्दू बना दो, यह हमारा कभी लक्ष्य नहीं रहा। और अगर किसी का है तो गलत है। गीता का जो आधार है, वह जीवन का आधार है, बस।

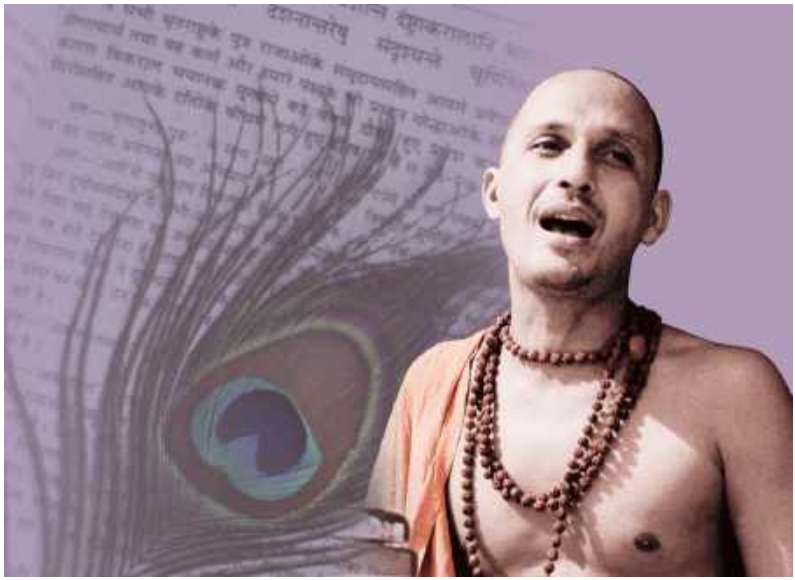

योग में क्लेशों का सिद्धान्त

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग में सिद्धान्त की अपेक्षा अभ्यास पर ज्यादा बल दिया जाता है, फिर भी दार्शनिक पक्षों का मूलभूत ज्ञान रहने पर साधक यह जान सकेगा कि योग के द्वारा वह किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सचेष्ट है, ध्यान की अवस्थाएँ कैसे उसे प्राप्त होंगी। यद्यपि योग दर्शन में अन्तर्दृष्टि की बहुत सारी बातें भरी पड़ी हैं, परन्तु अन्ततः सबका उद्देश्य है कि साधक किस प्रकार आत्मदर्शन की ओर अग्रसर होता है। अनेक दर्शन, विशेषकर पाश्चात्य दर्शन अपने ही शब्दों की भूल-भुलैया में खो जाते हैं। वास्तविकता का एक सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत करने के लिए अपनी ही धारणाओं को अपने आस-पास की वस्तु-स्थिति के अनुरूप ढालने की उनकी प्रवृत्ति होती है। दार्शनिक अपने ही शब्दों में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उनके द्वारा प्रस्तुत की गई तस्वीर सत्य का वास्तविक प्रतिबिम्ब है। वे यह नहीं समझते कि उनकी धारणा एक नमूना मात्र है। मकान का नक्शा मकान नहीं हो सकता। पूर्वी दर्शन में योग, ज़ेन आदि मत इसकी पुष्टि करते हैं कि साधक अपने ही प्रयासों से सत्य तक पहुँच सकता है। मौखिक या लिखित शब्द-चित्रों से सत्य का उद्घाटन न तो हुआ है और न होने की सम्भावना दिखती है। योग दर्शन की विचारधारा सब के ऊपर लागू होती है। यह एक व्यावहारिक ज्ञान है।

उपयोगी दर्शन की सबसे पहली आवश्यकता है कि उसका सम्बन्ध मानव जीवन से हो। वह यह बता सके कि मानवता को दुःखों और कष्टों से किस प्रकार ऊपर उठाया जा सकता है। महात्मा बुद्ध ने इस आवश्यकता को समझा था। फलतः ईश्वर की सत्ता से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देना उन्होंने अस्वीकार किया। इसलिये नहीं कि उन्हें उनका कोई ज्ञान नहीं था, बल्कि इसलिये कि मनुष्य जीवन का कोई सम्बन्ध उन प्रश्नों से नहीं था। वे उनका उत्तर 'ईश्वर है' या 'ईश्वर नहीं है' में दे सकते थे, परन्तु इन दोनों उत्तरों से मानवता को कुछ उपलब्धि नहीं होती। उसके लिए ये उत्तर शब्द मात्र होते। इस प्रश्नोत्तर से मानव-अस्तित्व या जीवन की खुशी में कोई अन्तर नहीं आता। बुद्ध का मुख्य उद्देश्य था – मनुष्यों को दुःखों से ऊपर उठाना। जब वे अपनी वर्तमान

स्थिति से अपने को ऊपर उठा लेते तो उन्हें अपने इच्छित प्रश्नों के उत्तर स्वतः मिल जाते। उन्हें प्रश्नोत्तर की आवश्यकता ही नहीं रहती।

योग का उद्देश्य यह भी है कि मनुष्य अपने कष्टों का उन्मूलन करे ताकि उसके सामने आध्यात्मिकता का स्वरूप प्रकट हो और वह अपने को देख सके। मनुष्य के दुःखों एवं कष्टों के कारणों का उल्लेख योग में है। वे पाँच प्रकार के होते हैं, जिन्हें पंच-क्लेश कहा जाता है। ये क्लेश जटिल सिद्धान्तों पर नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन और कर्मों के अध्ययन पर आधारित हैं। इन पंच-क्लेशों की अभिधारणा उन ऋषियों ने की जिन्होंने स्वयं इन्हें अनुभव किया और इनका अतिक्रमण कर इनसे मुक्ति पाई, जिसके फलस्वरूप वे चित्र के टुकड़ों की अपेक्षा सम्पूर्ण चित्र का अवलोकन कर सके। हम में से अधिकतर लोग अपने दुःखों में इस तरह लिप्त हैं कि उनके कारणों को पहचान नहीं पाते। इन दुःखों के कारण हैं – अविद्या या वास्तविकता की जानकारी न होना, अस्मिता या अहंकार, राग या विषयों के प्रति आकर्षण, द्वेष या विषयों से विकर्षण और अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु-भय।

वास्तव में ये क्लेश अलग-अलग नहीं हैं। एक से दूसरे क्लेश की उत्पत्ति होती है। सत्य या वास्तविकता का अज्ञान ही इनका मूल कारण है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने ही विषय में सोचता है। वह अपने अहं से एकात्म होकर अन्य व्यक्तियों और वस्तुओं से अपने को अलग देखने लगता

है। वह अपने अहं से प्रेरित होकर इधर-उधर घूमता और कर्म करता है। अपने आनन्द और आराम के साधन जुटाने में वह सभी वस्तुओं को किसी-न-किसी रूप में अपना सेवक समझता है। इसी तरह उसके मन में पसन्द-नापसन्द की बात उठती है। वह ऐसे पदार्थों और लोगों की तरफ आकृष्ट होता है जो उसे आनन्द देते हैं, उसके अहं को पोषित करते हैं। जिन चीजों से उसे अप्रसन्नता या असुविधा होती है, वे उसकी घृणा का विषय बन जाती हैं। निश्चय ही सुखद और दुःखद वस्तुओं एवं विषयों के बीच इतनी स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। कुछ विषय अथवा लोग अलग-अलग समय में कभी सुख और कभी दुःख पहुँचा सकते हैं। कुछ विषयों और व्यक्तियों के प्रति वह उदासीन रह सकता है, उसे उनमें न रुचि होगी, न अरुचि। किन्तु उपयुक्त स्थिति में ये उदासीन पदार्थ भी आसानी से रुचि या अरुचि के विषय बन सकते हैं। विषयों एवं व्यक्तियों के प्रति हमारी आसक्ति और अहं की भावना के कारण जीवन के प्रति गहन आसक्ति एवं मृत्यु के प्रति भय का भाव उत्पन्न होता है। हम न अपनी निजी पहचान खोना चाहते हैं और न उन विषयों अथवा व्यक्तियों से बिछुड़ना चाहते हैं जो हमारे अहं को पोषित करते और तुष्टि प्रदान करते हैं।

क्लेश व्यक्ति को क्षणभंगुर निस्सार वस्तुओं से तादात्म्य का अनुभव कराकर दुःख पहुँचाते हैं। व्यक्ति अपने को शरीर, मन और अहंकार मान बैठता है। इसीलिए वह जाने-अनजाने हमेशा दुःखी रहा करता है कि ये सारी चीजें मृत्यु के समय तिरोहित हो जाएँगी। वह अपनी पहचान नित्य आत्मा के साथ नहीं बना पाता, जो शाश्वत और चिरंतन है। यही बात उन विषयों के साथ लागू होती है जिनसे तृष्णा पैदा होती है। वे चिरन्तन नहीं हैं और काल-क्रम में उनका विनाश हो जाएगा। वे तुष्टि प्रदान नहीं कर पायेंगे। वितृष्णाओं के बारे में क्या कहें? यह बात सही है कि वे हमारे अहं को इस प्रकार पोषित नहीं कर पातीं जिससे हमें सुखानुभूति हो। इसलिए बाह्यतः वे हमारे दुःख का कारण हैं। लेकिन वास्तव में रुचि अरुचि से तत्त्वतः भिन्न नहीं है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हम लोग तृष्णा और वितृष्णा, सुरुचि और अरुचि, दोनों चक्कियों के बीच पिस रहे हैं। इस कथन में बड़ी सच्चाई है – 'जिससे आप सबसे अधिक प्रेम करते हैं, उसी से आप सबसे अधिक घृणा भी करते हैं।' जिस व्यक्ति से हम घृणा करते हैं, परिस्थितियों के अनुकूल होने पर हम उसी से प्रेम करने लग जाते हैं।

क्लेश निरन्तर हमें दुःख पहुँचाते रहते हैं, क्योंकि हम उनकी वर्तमान स्थिति को बरकरार रखने की चेष्टा में लगे रहते हैं। हमें नयी मोटर कार से भारी लगाव हो जाता है। यदि कोई उसे चुरा लेता है, तो हम दुःखी और अवसादग्रस्त हो जाते हैं। कोई टिप्पणी कर देता है कि हमारा काम संतोषप्रद नहीं है, तो हम दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि काम हमारे व्यक्तित्व का ही विस्तार है, हमारे अहं का एक अविभाज्य अंग है। इसी प्रकार जीवन में हम जो कुछ करते हैं, उससे हमारा लगाव हो जाता है। यदि हम अपने जीवन के समस्त कृत्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करें और उन कृत्यों से प्राप्त क्षणिक या चिरस्थायी दुःखों का विश्लेषण करें, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि जीवन में अनुभूत हर प्रकार के दुःख इन्हीं पंच क्लेशों के अन्तर्गत आ जायेंगे।

वासनाएँ अथवा कामनाएँ हमें निरन्तर ऐसे परिवेश की ओर आकृष्ट करती रहती हैं जहाँ उनकी तृप्ति हो सके। यदि हम सावधानीपूर्वक अपने समस्त मानसिक और शारीरिक क्रियाकलापों का विश्लेषण करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि वे किसी-न-किसी रूप में (कभी सूक्ष्म तो कभी स्थूल) हमारी वासनाओं से परिचालित होते हैं। जीवन के प्रत्येक विचार और कार्य के पीछे वासना ही प्रेरक तत्त्व है। वही हमें उद्दीपन प्रदान करती है। मन और शरीर उसी दिशा में गमन करते हैं जिधर व्यक्ति की अन्तर्निहित वासना या कामना को तृप्ति मिलती है।

इस तरह वह चेतन शक्ति भी, जो हमारे मन को प्रकाश देती है, इच्छापूर्ति की इस भाग-दौड़ में शामिल होने को विवश हो जाती है। सभी इच्छायें एक साथ पूरी नहीं होतीं, अत: उपयुक्त अवसर पाते ही अपने को प्रकट कर देती हैं।

इन इच्छाओं का कारण क्या है? कारण वे क्लेश हैं जिनकी चर्चा हम ऊपर करते आए हैं। अगर क्लेश न हों तो इच्छायें भी न होंगी। वस्तुओं के प्रति आकर्षण, विकर्षण, अहंभाव, जीवन के प्रति आसक्ति और सत्य की अनभिज्ञता ही इच्छाओं को जन्म देते हैं। ये इच्छायें किस प्रकार हमारे ध्यान के अभ्यास पर विपरीत प्रभाव डालती हैं? ये सदा हमारे मन को ध्यान के विषय से दूर रखती हैं। ये इच्छायें अपनी तृप्ति के लिए हमारे मन को किसी-न-किसी बाह्य पदार्थ पर टिकाये रखती हैं। फलतः भटकता हुआ मन एकाग्र नहीं हो पाता। एकाग्रता के अभाव में ध्यान भी नहीं लग पाता।

आत्मज्ञान के बिना क्लेशों का निवारण बिल्कुल संभव नहीं। अधिक-से-अधिक हम यही कर सकते हैं कि उन्हें क्रमशः कम करते चलें। यह क्रिया

कई विधियों से की जा सकती है। सर्वप्रथम हमें क्लेशों की उत्पत्ति पर विचार करके उन्हें समझना होगा कि वास्तव में ये क्लेश कष्टों के वाहक हैं। भली प्रकार विचार करने पर हम समझ जायेंगे कि ये क्लेश किस प्रकार दुःखों एवं कष्टों का सृजन करते हैं। यद्यपि इस विषय पर यहाँ कुछ विचार-विमर्श किया गया है तथापि व्यक्तिगत रूप से अनुभव कर लेना अच्छा है। स्वानुभव के बाद व्यक्ति अपनी रुचि-अरुचि तथा अहं को दूर करने के लिए अपने मन का पुनर्संयोजन कर सकता है।

इसी तरह आत्म-सुझावों के द्वारा शरीर एवं मन के साथ तादात्म्य-भाव को दूर किया जा सकता है। इससे अहं भाव कम होगा और व्यक्ति शाश्वत सत्य और आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। राजयोग में वर्णित यम-नियमों का अभ्यास भी क्लेशों का निवारण करने में सहायक होगा। कर्मयोग और भक्तियोग भी जीवन के क्लेशों को दूर करने के सफल उपाय हैं।

आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के साथ ही क्लेशों का प्रभाव स्वभावतः कम होने लगता है। आप यह कह सकते हैं कि 'क्लेशों की अनुपस्थिति में जीवन का आनन्द ही समाप्त हो जायेगा, जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। इच्छा और अनिच्छा ही जीवन को विशिष्टता प्रदान करने वाले तत्त्व हैं। उनके अभाव में जीवन सूना हो जायेगा।' इन बातों से पता लगता है कि आप जीवन के प्रति कितने आसक्त हैं। जिस जीवन को हम देख रहे हैं वह तो अपने सबसे स्थूल स्वरूप में है। जैसे-जैसे मनुष्य आध्यात्मिक पथ पर प्रगति करता है, वह सत्य के निकट आता जाता है। उसे स्पष्ट रूप से समझ में आने लगता है कि उसको चेतना की वर्तमान स्थिति में जो जीवन अभी दिख रहा है वह शनैः-शनैः दिखाई पड़ने वाले सूक्ष्मतर जीवन तत्त्व के सम्मुख कुछ भी नहीं है। दोनों प्रकार के जीवन में बड़ा अन्तर है। हमें यह भी स्पष्ट होने लगेगा कि जीवन के वर्तमान स्वरूप से जितनी आसक्ति हमने पाल रखी है, यह जीवन उसके योग्य नहीं है। इस तरह हम स्वतः ही क्लेशों के प्रभाव से मुक्त होने लगेंगे।

कामना कष्टदायिनी

संत इब्राहीम खवास किसी पर्वत पर जा रहे थे। पर्वत पर अनार के वृक्ष थे और उनमें फल लगे थे। इब्राहीम की इच्छा अनार खाने की हुयी। उन्होंने एक फल तोड़ा, किन्तु वह खट्टा निकला, इसलिए उसे फेंककर वे आगे बढ़े। कुछ आगे जाने पर एक मनुष्य मार्ग के पास लेटा हुआ मिला। उसे बहुत-सी मक्खियाँ काट रही थीं, लेकिन वह उन्हें भगाता नहीं था। इब्राहीम ने उसे नमस्कार किया तो वह बोला – इब्राहीम अच्छे आये।

एक अपरिचित को अपना नाम लेते देख इब्राहीम को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा – आप मुझे कैसे पहचानते हैं?

पुरुष – एक भगवत्प्राप्त व्यक्ति से कुछ छिपा नहीं रहता।

इब्राहीम – आपको भगवत्प्राप्ति हुयी है तो भगवान से प्रार्थना क्यों नहीं करते कि इन मक्खियों को आप से दूर कर दें?

पुरुष – इब्राहीम! तुम्हें भी तो भगवत्प्राप्ति हुयी है। तुम क्यों नहीं प्रार्थना करते कि तुम्हारे मन में अनार खाने की कामना न हो? मक्खियाँ तो शरीर को ही कष्ट देती हैं, किन्तु कामनायें तो हृदय को पीड़ित करती हैं।

त्रिविध जागरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सामान्यत: हम सोचते हैं कि योग के आसन और प्राणायाम शारीरिक व्यायाम हैं, और ध्यान आध्यात्मिक साधना है। यह सत्य नहीं है। स्वामी शिवानन्द जी मुझसे कहा करते थे कि जब तुम आसनों का अभ्यास करते हो तब चक्रों की जागृति होती है, प्राणायाम का अभ्यास करते समय सुषुम्ना नाड़ी जागृत होती है और ध्यान के दौरान मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी जागृत होती है। वे इसे 'त्रिविध जागरण' कहा करते थे।

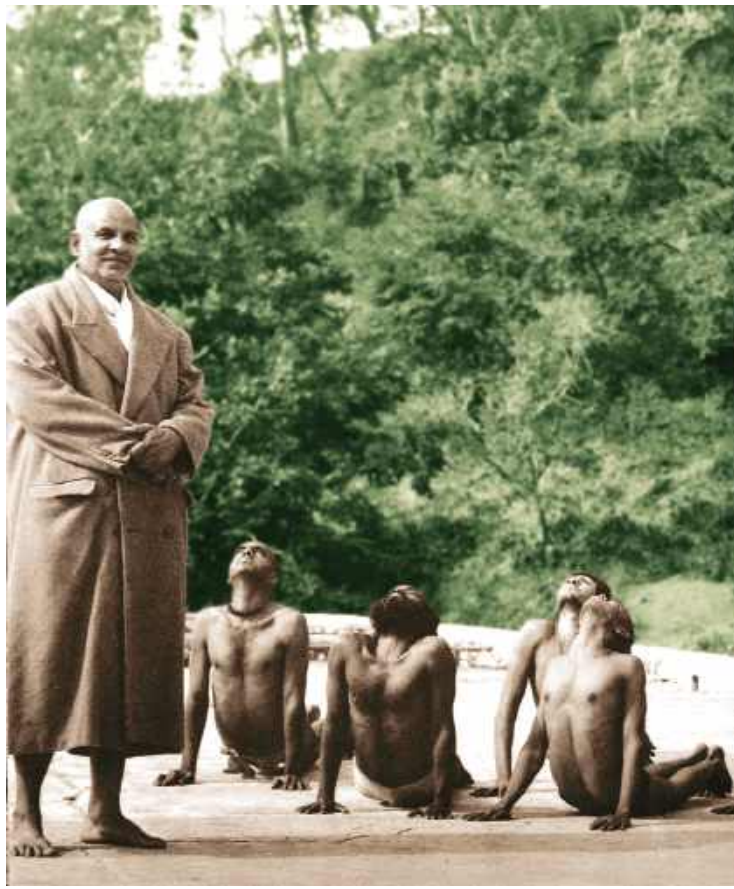

एकाग्रता और अन्तर्मौन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

इस संसार में बहुत-से लोग अपनी शक्ति को, अपने सामर्थ्य को बढ़ाना चाहते हैं, परन्तु सभी लोग ऐसा नहीं चाहते। कुछ लोग दुनिया में आपको ऐसे भी मिलेंगे जिनके सामने एक बहुत बड़ा सवाल है। वह सवाल यह है कि भगवान में मन कैसे लगे। सब लोगों के सामने तो नहीं, लेकिन बहुत लोगों के मन में जीवन के किसी-न-किसी मौके पर यह सवाल उठता ही है कि भगवान में मन कैसे लगे। अब इस बात को जरा अच्छी तरह, ध्यान से सोचना चाहिए।

एक तो दुनिया में वे लोग होते हैं जो भगवान के पास जाते हैं, प्रार्थना और वंदना करते हैं और उनके जो आपत्ति-विपत्ति, कष्ट और दुःख हैं, उनसे छुटकारा पाने के लिए निवेदन करते हैं। वे लोग भी बड़ा मन लगाकर मंदिरों में और संत-महात्माओं के पास जाते हैं। बीस हजार जप करना हो तो बीस हजार जप करेंगे, तीर्थ करना हो तो तीर्थ करेंगे और मनौती करनी होगी तो मनौती करेंगे। मन उनका लगेगा, किन्तु उनका लक्ष्य है कि मनोकामना पूर्ण होनी चाहिए। मुझे कष्ट है, शरीर का कष्ट है, घर का कष्ट है या किसी और प्रकार की आपत्ति है, उससे हमको मुक्ति मिलनी चाहिए, यह उनका ध्येय होता है।

दूसरे लोग ऐसे होते हैं जो अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए, किसी मतलब को लेकर, मनोकामना की पूर्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं। जब वे उपासना करते हैं तब उनका मन लगता है, चाहे दुर्गा-पाठ करें, चाहे राम-रक्षा स्तोत्र का पाठ करें। किन्तु बिना किसी प्रयोजन के, बिना किसी कामना के ईश्वर में अपना मन लगे और उतनी देर के लिए हम केवल उसका अनुभव करें, यह एक बहुत बड़ा सवाल हर आदमी के मन में है, किन्तु हम लोग इसे केवल सिद्धान्तों के द्वारा नहीं सुलझा सकते।

ईश्वर का स्वरूप चेतनामय है, वह निर्गुण और निराकार है। उसका कोई स्वरूप नहीं है, मन से, बुद्धि से, इन्द्रियों से उसे देखा नहीं जा सकता, किन्तु उसका अनुभव हो सकता है, ऐसा सन्त-महात्माओं ने कहा है। इसका मतलब यह हुआ कि ईश्वर, जो निराकार वस्तु है, जो निर्गुण वस्तु है, जिन्हें आँखों से, इन्द्रियों से, बुद्धि या मन से नहीं देखा जा सकता, उसका हम अनुभव कर

सकते हैं। इसी अनुभव को 'दर्शन' कहते हैं। यह जो दर्शन शब्द आया है, यह एक अनुभव है। परन्तु ईश्वर का जो दर्शन या अनुभव होता है, वह कैसे होता है? क्या यह मन से होता है, या बुद्धि से या इन्द्रियों से? उत्तर मिलता है – नहीं, जब आप अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों की बलि दे देते हैं, तब ही उसका दर्शन होता है।

इसलिए योगशास्त्र में जो भी अभ्यास आये हैं, उनमें ये तीन बातें मुख्य हैं – पहला, भौतिक चेतना को भूल जाओ, दूसरा, मानसिक चेतना को भूल जाओ और तीसरा, अहं को मिटा दो। जब मैं 'मिटाना' शब्द कहता हूँ तो इसका तात्पर्य है उसके प्रति जो आसक्तिपूर्ण विचार हैं, उनको मिटाना। ईश्वर का क्या रूप है, इसका निर्णय अभी लेना ही नहीं। यह पक्की बात है कि जो भी ईश्वर है या जैसा भी वह है, वह इन तीनों गुणों को मिटाने के बाद ही मिलता है और इन तीनों को मिटाने के लिए जो साधना होती है, उसको ही 'योग साधना' कहते हैं। यहाँ शरीर को मिटाने का मतलब है, 'थोड़ी देर के लिए शरीर को भूल जाना'। मन को मिटाने का मतलब, 'अपने मन में जो वृत्तियाँ हैं उन्हें थोड़ी देर के लिए भूल जाना' और तीसरा मिटाना, 'मैं का ख्याल'। ये तीनों बातें थोड़े समय के लिए रोज मिटती हैं। रात को जब आप सो जाते हैं तब क्या होता है? शरीर का ख्याल रहता है क्या? नहीं रहता। मैं का ख्याल रहता है क्या? नहीं रहता। विचारों का ख्याल, सुख-दुःख का ख्याल रहता है क्या? तब तो गहरी निद्रा ही समाधि हो गयी, तब निद्रा को ही दर्शन कहना चाहिए, लेकिन ऐसी बात नहीं है।

निद्रा की गहरी स्थिति हमारे सामने एक उदाहरण है। वह वास्तविक स्थिति नहीं है, इस उदाहरण के द्वारा हम अपने आप को समझाते हैं कि ऐसा ही होता है। फर्क केवल इतना है कि नींद में आप सोये रहते हैं, आपकी चेतना उस समय एकदम सिमट जाती है और आपको तमोगुण की स्थिति का अनुभव होता है। जबकि ध्यान की अवस्था में क्या होता है? अन्दर एकदम प्रकाश रहता है, चेतना रहती है। मेरा कहने का मतलब है कि साधना करते-करते ठीक वही अवस्था प्राप्त होती है जो नींद में होती है, परन्तु निद्रा में तमोगुण और ध्यान में सत्त्वगुण होता है, दोनों में इतना ही अन्तर है। इसलिए भगवान में मन कैसे लगे, इसके लिए सन्तों ने अनेक उपाय बताये हैं और इन उपायों में कई उपाय ऐसे हैं जिन्हें हम कर सकते हैं। इनमें एक उपाय है, 'अन्तर्मौन'।

मन का द्रष्टा बनना

अन्तर्मौन में हम अपने मन के अन्दर उठने वाले विचारों को किसी भी प्रकार से दबाते नहीं हैं, उठने देते हैं और उनका मन के अन्दर ख्याल करते जाते हैं। उनको देखते हैं कि क्या हो रहा है। मैं क्या सोच रहा हूँ, मेरे अन्दर कौन-कौन सी भावनायें उत्पन्न हो रही हैं, मेरे दिमाग में कौन-कौन से स्वरूप आ रहे हैं, कौन-कौन सी कल्पनायें उतर रही हैं। इसको एक द्रष्टा की तरह देखना पड़ता है, क्योंकि इन्सान अपने विचारों के साथ इतना चिपटा रहता है, जैसे कि पानी और मिट्टी एक-दूसरे में मिले रहते हैं, जैसे दूध और शक्कर एक-दूसरे से मिल जाते हैं। इसी तरह से हम और हमारे विचार एक-दूसरे से इतने मिल जाते हैं कि हम उन्हें किसी भी तरीके से अलग नहीं कर पाते। एक विचार और दूसरा विचारक होना चाहिए। अतः इन दोनों को अलग करना है और इनको अलग करना ही योग में सबसे पहली सीढ़ी है। मैं यह नहीं कहता कि यह सबके लिए आवश्यक है, लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि बहुतों के लिए यह अभ्यास जरूरी है।

अधिकतर लोग ऐसे होते हैं कि उनके मन में जब कोई अच्छा विचार उत्पन्न होता है तो बड़े खुश हो जाते हैं और बुरा विचार उठा तो बहुत दुःखी हो जाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि मनुष्य अपने मन के अन्दर उत्पन्न होने वाले विचारों से बहुत प्रभावित होता है। यह इन्सान की सबसे बड़ी कमजोरी है और यही इन्सान की सबसे बड़ी विशेषता भी है। मनुष्य की विशेषता यह

है कि वह अपने अन्दर उठने वाले विचारों को जानता है और उनसे प्रभावित होता है। यही उसकी सीमा भी है और यही उसकी कमी भी है। मनुष्य अपने अन्दर उठने वाले विचारों से इतने प्रभावित होते हैं, इतने परेशान होते हैं कि कहते हैं – इससे अच्छा तो मरना है।

हम औरों की बात क्या कहें, हमें अपने ही बचपन की एक घटना याद आती है जब हम सोचते-सोचते इतने परेशान हो जाते थे कि समझ ही में नहीं आता था करें तो क्या करें। तब हमने कैलास-मानसरोवर जाने वाले स्वामियों से पूछा, 'हमारे मन में इतने विचार आते हैं कि हमें कभी-कभी बड़ी परेशानी हो जाती है और हम तंग हो जाते हैं।' उन्होंने कहा, 'इन विचारों को तो तुम रोक नहीं सकते हो। यह तो तुम्हारी स्वाभाविक क्रिया है, तुम्हारे मन का स्वभाव है। इसलिए अपने मन में उठने वाले विचारों से अप्रभावित रहो।' हमने कहा, 'यह कैसे सम्भव है? जब मेरे मन में अच्छे विचार आयें, बुरे विचार आयें, धार्मिक विचार आयें, अधार्मिक विचार आयें, काम-क्रोध और लोभ-मोह के विचार आयें, धर्म-कर्म के विचार आयें और उनसे मैं बिल्कुल अप्रभावित रहूँ, तब तो मैं एकदम जानवर हूँ, मूर्ख हूँ।' उन्होंने कहा, 'ऐसी बात नहीं है।'

सूक्ष्म शरीर की भूमिका

मनुष्य का व्यक्तित्व मनोविज्ञान में और योग विज्ञान में भी बड़ा विचित्र बतलाया गया है। इसको सुनने पर कभी-कभी विश्वास ही नहीं होता। कई लोग तो इसे समझते ही नहीं और यह कहते हैं कि मनुष्य की एक चेतना है जो भौतिक चेतना है, इसी को हम शरीर कहते हैं। लेकिन इस शरीर के अन्दर भी एक चेतना है, जिसे कहते हैं 'सूक्ष्म शरीर'। धर्म में या पुराणों में इसे अलग-अलग नामों से पुकारा गया है। हमारा यह सूक्ष्म शरीर गोदाम घर की तरह है। वह एक रजिस्टर जैसा है, तुम जो कुछ भी देखते हो, जो कुछ भी सुनते हो, जो कुछ भी तुम्हारी जिंदगी में सामने आता है, वह सब इस रजिस्टर में अंकित हो जाता है। इसको आप जिंदगी का बही-खाता कह सकते हैं।

यह निश्चित रूप से होता है। अगर नहीं होता तो मैं दो साल पहले बालाघाट आया और अब दो साल बाद आ रहा हूँ, यह कैसे याद रहता? कहते हैं वह एक अलग ही शरीर है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं, लेकिन यह स्थूल शरीर की तरह नहीं है। यह तो तरंग की तरह है, कम्पन के रूप में है। इसे हम ज्यादा समझा नहीं सकते। अब होता क्या है कि मनुष्य के इस सूक्ष्म शरीर में बचपन

से अब तक के सभी अनुभव हैं। माँ-बाप, भाई-बहन, दोस्त, सम्पत्ति, विद्या, समाज, सुख-दुःख, आशा-निराशा, सफलता-असफलता, हानि-लाभ, निंदा-स्तुति के सभी संस्कार इसमें अंकित हैं।

मन का एक स्वभाव और भी है कि जितनी चीजें सूक्ष्म शरीर में रहती हैं वे ऐसे निकलती रहती हैं जैसे गुलाब से सुगन्ध निकलती है या मरे हुए जानवर के शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। सूक्ष्म शरीर में जो शक्ति है, जो उसका द्रव्य-गुण है, वह उसमें भरा हुआ है। जिस तरह कोयला जलता है, वह गरम है, लाल है, उसमें ताप है, यह उसका जन्मजात स्वभाव है, उसी तरह से सूक्ष्म शरीर का स्वभाव क्या है? विचार। विचार, सजगता और अनुभूति, ये उसमें बराबर बने रहेंगे। यह उसके साथ पैदा हुआ है और उसके साथ ही जायेगा। लेकिन इसकी जो क्षमता या जो गुण है, जिसे मैंने विचार या भावना कहा, इसमें से तरंगों के रूप में निकलती रहती है। ये ऐसे निकलती हैं जैसे जला हुआ कोयला है, एकदम गरम है, जल रहा है, उससे ताप निकल रहा है। मान लो, चार-पाँच कोयले आपने जला डाले। अब जलने के कुछ घण्टे बाद राख हो जाती है। कोयले में जो ताप की तरंगें थीं, वे समाप्त हो जाती हैं। कोयला ठण्ढा हो गया, उसमें अब ताप नहीं है। अब उसका मूल स्वभाव, ताप समाप्त हो गया है। इसी तरह से इस सूक्ष्म शरीर में जो विचार हैं या भावनायें हैं, उन्हें मुख्यतः आप चेतना कह सकते हैं। यह चेतना आपको दुनिया में रहने से मिली है, पचीस या पचास साल की चेतना, जन्म-जन्म की चेतना इसमें मिली हुई है और वह इसमें से तरंगों के रूप में निकलती है। इन तरंगों को ही आप लोग कहते हैं विचार।

अब स्वामीजी ने मुझे जो समझाया था, वह मैं आपको समझा रहा हूँ। जब आप आँखें बन्द करके बैठते हैं तो आपको इस प्रकार अनुभव होता है कि दुनियाभर के विचार आपके सामने आ रहे हैं, छोटे-से-छोटे, एकदम मामूली, जिनका जिन्दगी से कोई सरोकार नहीं। ऐसे छोटे-छोटे ख्याल हमारे दिमाग में उतरते जाते हैं। हम घबरा जाते हैं। हम घबराते क्यों हैं? इसलिए कि हम सोचते हैं कि यह नहीं होना चाहिए। यदि आप सोचते हैं कि ऐसा नहीं हो तो यह बात प्रकृति के एकदम विपरीत है। मन का धर्म है सोचना, आग का धर्म है जलना, पानी का धर्म है बहना। इसी प्रकार से हमारे सूक्ष्म शरीर का धर्म क्या है? हमारे अन्दर जो कुछ है उसको ऊपर उठाते रहना।

आप अभी बैठे हुए हैं और आपका मन बहिर्मुख है। बहिर्मुख इसलिए है कि मैं बोल रहा हूँ और आपका ध्यान मेरी तरफ है। इसलिए आपके मन

में जो प्रतिक्रिया हो रही है उसकी जानकारी आपको नहीं हो रही है। लेकिन आपका मन अभी भी प्रतिक्रिया कर रहा है, वह तो चौबीसों घण्टे ऐसा करता है। यह मन का स्वभाव है। आपको मालूम हो या न हो, आप जगे रहें या सोए रहें, आप बीमार रहें या गाँजा पीकर धुत्त रहें, वह तो अपना काम करेगा, आप उसको रोक नहीं सकते। यदि आप कहीं पर आँखें बन्द करके बैठेंगे तो भगवान का नाम जपते-जपते सब पता चलने लगता है। कई प्रकार के विचार सामने आते हैं और हम घबरा जाते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वर के मार्ग पर चलने वाले जो साधक और उपासक हैं, उनके सामने सबसे बड़ी बाधा केवल एक है कि वे अपने मन को नहीं जानते। मुझे तो ऐसा ही लगता है। अब आप लोग स्वयं ही सोचें और समझें। ऐसा लगता है कि हम लोगों ने अपने मन की असलियत और स्वभाव को जानने की कोशिश नहीं की।

हमारे आश्रम में एक अलसेशियन कुत्ता था। वह बहुत भौंकता था। उस समय आश्रम में मुझसे मिलने के लिए कुछ व्यक्ति आये, जो बहुत ही संवेदनशील तथा कमजोर दिमाग के थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'स्वामीजी, यह कुत्ता भौंकता क्यों है?' मैंने कहा, 'कुत्ता और करेगा क्या, भौंकना तो उसका स्वभाव है।' तो उन्होंने कहा, 'इसे चुप कराइये।' मैंने कहा, 'इसे चुप कराने का केवल एक उपाय है, गोली मार दो। दूसरा तो कोई उपाय है नहीं।' अच्छा, जब वे व्यक्ति ध्यान या भजन करने के लिए बैठते थे तब हम कुत्ते को अपने पास

लेकर खेलते थे, परन्तु जैसे ही कुत्ता सड़क पर किसी साईकिल की आवाज सुनता या दरवाजे पर किसी की खटखटाहट होती, वह तुरन्त दौड़कर भौंकने लगता था। वे व्यक्ति फिर कहते थे, 'स्वामीजी, इसे चुप कराइये, मुझे ध्यान में बड़ा विघ्न होता है।' मैंने कहा, 'चुप कराने की तो मैं कोशिश कर ही रहा हूँ, लेकिन दरवाजे पर कोई आदमी आ जाता है तो यह फिर भौंकने लगता है। बुद्धू होता तो शायद नहीं भौंकता, लेकिन कुत्ता तेज है, इसलिए भौंकता है।' उन्होंने कहा, 'फिर भी कोई उपाय कीजिये न!' मैंने कहा, 'कोई उपाय नहीं है, कुत्ता भौंकेगा अवश्य।'

यह दृष्टान्त मुझे इसलिए याद आया कि आदमी जितना अधिक संवेदनशील या उलझनपूर्ण होता है, उसका मन उतना ही विक्षिप्त होता है। यह बात अपने मन में याद रख लीजिये कि यदि आपका मन बहुत अधिक संवेदनशील है, तो भगवान की उपासना के समय आपके मन में ज्यादा विचार आयेंगे ही। अब सवाल यह उठता है कि इन विचारों का हम क्या करें और ये विचार कब तक चलेंगे? यूरेनियम एक रेडियोएक्टिव पदार्थ है, उससे जो किरणें निकलती हैं, भौतिकशास्त्री कहते हैं उन्हें प्राकृतिक रूप से समाप्त होने में ढाई अरब वर्ष लगते हैं। जब एक छोटे-से पदार्थ से किरणों के निकलने में इतने वर्ष लगते हैं तो आपके मन की तरंगों को समाप्त करने में अगर तेरह-चौदह वर्ष लग गये तो क्या यह लम्बा समय है? हम चाहते हैं कि छः महीने या एक साल में हमारा मन शान्त हो जाये, असंप्रज्ञात समाधि लग जाए या शून्य अवस्था प्राप्त हो जाये! यह बहुत गलत धारणा है। इसी गलत धारणा के कारण बहुत-से लोग भटकते हैं, इसी की वजह से बहुत-से लोग अपने 'खसम' बदलते हैं।

खसम का अर्थ होता है गुरु। कबीरदासजी इसी को खसम कहते थे। मैं भी इसी का उपयोग करता हूँ। बहुत-से लोग अपना मंत्र बदलते हैं। बहुत-से लोग युक्ति भी बदलते हैं। युक्ति का अर्थ है, 'साधना की विधि'। लेकिन क्यों बदलते हैं? कोई कहता है, 'दो साल तो हो गये, कुछ नहीं मिल रहा है।' कोई कहता है, 'मैं छः महीने से जप कर रहा हूँ, कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है।' कोई कहता है, 'मैं दो साल से भगवान का स्मरण कर रहा हूँ, कुछ भी फर्क नहीं पड़ता।' कोई कहता है, 'मौन तो पाँच साल से करता हूँ, मुझे कुछ नहीं होता है।' लेकिन मैं कहता हूँ, तुम बीस साल से स्कूल-कॉलेज में पढ़ रहे हो, अभी तक तुमको हिन्दी बोलना ठीक से नहीं आया। अठारह साल शादी किये हो गये, मगर पति बनने के गुण नहीं आये, पत्नी बनने की योग्यता पक्की नहीं

हुई। आदमी को जब एक साधारण-सी चीज को प्राप्त करने में पन्द्रह-बीस साल लगते हैं, तो इस मन को ऊँचा उठाने में कितने दिन लगेंगे? इसलिए हम लोगों ने एक उपाय निकाला है, जिसका नाम है अन्तर्मौन।

अन्तर्मौन के अभ्यास द्वारा अर्धचेतन मन में उठने वाले विचारों को शान्त किया जाता है। तब मन में सहज रूप से एकाग्रता आ जाती है। यदि एकाग्रता के अभ्यासों से अपने मन को एकाग्र नहीं करोगे तो वे विचार अपनी स्वाभाविक गति में खत्म हो जायेंगे। जब एकाग्रता का अभ्यास करोगे तो वे बड़ी मात्रा में बाहर निकलते हैं। इसलिए अनेक साधक जो जप करते हैं, ध्यान करते हैं, उनके मन में कभी-कभी विचारों का बवण्डर इतना ज्यादा उठता है कि कई लोग तो साधना ही छोड़ देते हैं। मनुष्य अपने मन को जानता नहीं, इसलिए वह अपने मन का सामना नहीं कर सकता है। हम लोगों ने एक गलत तरीका अपनाया है, हम लोगों ने गलत विश्वास जमाया हुआ है कि विचार उपासना में बाधक हैं, हमारे मन में पैदा होने वाले जो ख्याल हैं, वे हमारी भगवान की उपासना में बाधक हैं।

हमने जो धारणा बनायी है, वह गलत धारणा है। मैं भी पहले इसी धारणा वाला व्यक्ति था। मैं भी यही सोचता था कि रामायण-गीता जितनी देर पढ़ते हैं, उतनी देर तक मन में कोई विचार नहीं आना चाहिए। अगर कोई विचार आया तो आज मेरी साधना बेकार हो गयी, ऐसा मैं सोचता था। लेकिन आज मैं इसका ठीक उल्टा सोचता हूँ। मैं सोचता हूँ कि भगवान का भजन करते समय मेरे मन में जितने भी विचार आयें, वह मेरी सफलता है।

इसलिए सबसे पहले, भगवान में मन कैसे लगे, इसके लिए आपको अपने मन के अन्दर उठने वाले विचारों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। अपने मन में उठने वाले जो भी, जैसे भी विचार हों, अच्छे हों या गन्दे, उनके प्रति आपके मन में एक सहानुभूति होनी चाहिए, एक समझदारी होनी चाहिए कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बल्कि आपको तो करना यह चाहिए कि आपके मन के अन्दर जितने भी विचार-जमघट हैं, गठ्ठर हैं, उनको जितनी जल्दी हो सके निकालने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए अन्तर्मौन में कहते हैं कि आँखों को बन्द करो और अपने मन्त्र का जप करो, जप करते-करते यदि तुम्हारे मन के अन्दर किसी प्रकार के विचार उठें, तो उन विचारों को केवल देखते जाओ। उनके साथ अपने को मत मिलाओ, उनके साथ कोई दोस्ती मत करो और उनको खत्म करने की कोशिश भी मत करो, क्योंकि वे अपने

आप खत्म हो जायेंगे। उन विचारों को ऐसे देखो जैसे आप रात को स्वप्न में हाथी, घोड़ा, ऊँट, रेलगाड़ी, इत्यादि देखते हो। बिल्कुल स्वप्न जैसा रुख उनके प्रति अपनाना चाहिए।

अन्तर्मौन की प्रक्रिया

यह बिल्कुल सरल क्रिया है। आप लेट जाते हैं या बैठ सकते हैं। आराम-कुर्सी पर, पद्मासन में, सिद्धासन में, जमीन पर, बिस्तर पर, कहीं पर भी अपने को शिथिल कर लीजिये। बैठ जाइये और अपने चारों तरफ जो भी आवाजें हैं, उन सब आवाजों को पकड़ते जाइये। उनको हटाने का प्रयास मत कीजिये, उनको स्वीकार कीजिये। अपने मन को वहाँ से अलग मत कीजिये। अपने मन को उधर फेंकिये। जैसे चिड़िया बोल रही है, बाहर मोटरगाड़ी की आवाज है, कौन-सा लाउडस्पीकर बोल रहा है – इस तरह से उन विचारों को एकदम तरंगों की तरह भेजते जाइये। पाँच मिनट बाद आपको एकदम सन्नाटा मालूम होगा और जप भी चलता रहेगा। अपना राम-राम बोलते रहना या जो आप लोग बोलते हो उसको नहीं रोकना। वह तो चलता रहेगा। अभी जो मन्त्र है, भगवान का जो भी नाम है, उस नाम को लेते जाओ, किन्तु अपने मन में जो अनुभव आपको हो रहे हैं, उन अनुभवों को भी देखना व सुनना है। कभी-कभी ऐसा होता है कि अनेक आवाजें एक साथ सुनायी देती हैं। जैसे, एक चिड़िया बोल रही है, फिर दूसरी चिड़िया बोल रही है, किसी बच्चे की आवाज थोड़ी दूर से आ रही है, कोई बाँसुरी बजाता है, साइकिल की घण्टी बजती है, किसी

मकान के अन्दर बर्तन-भाण्डे की आवाज सुनायी देती है, तो किसी के घर में कभी-कभी दाल छौंकते हैं तो छौं की आवाज आती है, उन सबसे मन को खींचना नहीं। खींचने से फायदा नहीं। यह तो दबाव हो गया। यह तो मन के ऊपर हम लोगों ने बहुत बड़ा अन्याय कर दिया है। इसके अभ्यास के लिए चार-पाँच मिनट लगते हैं। उसके बाद बाहर की आवाजें सुनायी देती हैं, लेकिन असर नहीं करतीं, खत्म हो जाती हैं। यह मन की पहली अवस्था हो गयी।

दूसरी अवस्था – अपने चारों तरफ आप जो कुछ भी अनुभव कर सकते हो, जैसे, आप लेटे हुए हो, यह मकान है, यह कमरा, दीवार, छत, आपको इन सबका अनुभव होगा। चारों ओर जितनी चीजों की अनुभूति कर सको, उनकी अनुभूति करो। जैसे, हमने आँखें बन्द की हुई हैं और जानते हैं कि यहाँ माइक्रोफोन रखा है, टेप-रिकॉर्डर रखा है, इधर चिड़िया बोल रही है। इन सब बातों का बराबर मन में ख्याल होना चाहिए। मन को अलग नहीं करना, मन को फैलाते जाना। मन को खींचना मत, मन को संकुचित नहीं करना। मन का फैलाव जितनी दूर तक हो, उतना फैलाते जाना। जैसे, इस हॉल के बाहर सड़क है, कार खड़ी है, मोटरसाइकिल खड़ी है, साइकिल रखी है, कौन-सी कार का क्या नम्बर है, कार किस रंग की है। इन सबके लिए पाँच मिनट लगते हैं, घण्टा-डेढ़ घण्टा नहीं। पाँच मिनट के बाद भी, जो आपका राम नाम चल रहा है उसको छोड़ना नहीं, वह चलता रहना चाहिए। अपनी जो प्रार्थना, जो स्तुति, जो मन्त्र-जप, जो ईश्वर का नाम है, वह चलता रहेगा। पाँच मिनट बाद देखोगे कहीं कुछ नहीं है। बाहर की चीजों का प्रभाव खत्म हो गया, फिर राम-राम सबसे ऊपर आने लग गया। भगवान का नाम फिर प्रमुख हो जाता है, कभी बीच में आ जाता है, कभी नीचे आ जाता है, कभी प्रधान हो जाता है, फिर दब जाता है, फिर बीच में आता है, फिर सामने आता है। इस प्रकार यह बदलता रहता है। फिर तीसरी अवस्था में जाओ।

वह तीसरी अवस्था आपको मैंने बतला दी – मैं क्या सोचता हूँ, मेरे मन में क्या विचार आ रहे हैं, इत्यादि। जब आप अपने विचारों को देखने की कोशिश करते हैं तो आपको ऐसा लगता है कि विचार एकदम रुक गये हैं। अगर आप अपने विचारों को देखने की कोशिश करोगे, विचार रुक जाते हैं, स्तंभित हो जाते हैं। उस समय क्या करना है? फिर अपने मन्त्र पर जोर देना है, तब विचार खूब उठेंगे। उन विचारों का अन्दाज लगाना कि क्या-क्या विचार आये, कैसे विचार आये, क्या हुआ, कैसे हुआ।

हमें अपने मन को अधिक-से-अधिक एकाग्र करने की कोशिश करनी चाहिए। मन के साथ हम अपना जीवन-दर्शन बदल सकते हैं। शून्य अवस्था, निर्विचार अवस्था, ज्योति का दर्शन, आत्मा का दर्शन, ईश्वर का दर्शन तो इतने कठिन नहीं हैं। हम लोगों ने इन्हें बड़ा कठिन बना रखा है। हम आपको बतलायें कि जिस मन के द्वारा हम ऊपर चढ़ सकते हैं, उस मन के पैर हम लोगों ने काट दिये हैं। मन दस-बीस तो होते नहीं, आप जानते हैं। मन तो एक होता है। यही मन शैतान की तरफ, यही मन भगवान की तरफ और यही मन दुनियादारी के कार्यों में लगा रहता है। यही मन भगवान की भक्ति करता है, यही मन काम-क्रोध में जा सकता है। यही मन दूसरों की सहायता करता है और यही मन दूसरों की हत्या करने के लिए आपको प्रेरित करता है।

मन तो एक है, जिसकी सहायता लेकर अब हम लोगों को ईश्वर की तरफ जाना है। मन तो सीढ़ी है और हम लोगों ने सीढ़ी के डण्डे को बीच से काट दिया है, मन को दुर्बल बना दिया है। कैसे दुर्बल बना दिया है? मन में जो भी खराब विचार आते हैं, उन्हें एकदम समाप्त करके। हमारा मन कमजोर हो गया है, हमारी इच्छाशक्ति बहुत कमजोर है। हमारा संकल्प बहुत कमजोर हो गया है। योगशास्त्र से हमलोगों को जो एक नई दिशा लेनी है, वह यह कि मन के अनुसार बहुत अच्छी तरह से चलना है।

अगर मन आपका मित्र होगा तो आपका मन भगवान में लगेगा और यदि आप मन को शत्रु बनाओगे तो निश्चित रूप से आपको मानसिक बीमारी होगी। इसीलिए मनोविज्ञान में भी यही सिद्धान्त है कि मन का विरोध मत करो। मन का विरोध करने से मन विभाजित हो जाता है। एक वृत्ति दूसरी वृत्ति का विरोध करती है और संघर्ष बड़ा तेज हो जाता है। ठीक इसके बाद सिज़ोफ्रेनिया नाम की बीमारी हो जाती है, जिसको कहते हैं लड़का पागल हो गया, इसको अस्पताल पहुँचाओ। यह बीमारी आज से सौ साल पहले नहीं थी। सौ साल पहले की सभ्यता दूसरी थी। अब इधर 25-50 साल से सभ्यता बदल रही है।

मनुष्य का मन अधिक रजोगुणी और तमोगुणी हो गया है। उसमें सतोगुण नहीं रहा। इसलिए द्वन्द्व बढ़ गये हैं। संघर्ष इसीलिए बढ़े हैं। एक बात आपको और भी समझानी है और वह है कुण्डलिनी योग के बारे में, क्योंकि कई लोगों ने मुझसे व्यक्तिगत रूप से भी प्रश्न पूछा है और मैं चाहता हूँ कि उसका उत्तर सब लोगों को समझा दूँ।

चक्रों की जागृति

तंत्र शास्त्र के अनुसार हम लोगों की रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से में शुक्र नाड़ी होती है। वहाँ एक छोटी ग्रंथि है, जो सोई हुई है। उसको जगाते हैं। उसको जाग्रत करने से साधक को कई प्रकार के अनुभव होते हैं। उन अनुभवों के बाद उसको अपने मन पर नियंत्रण होता है। इस कुण्डलिनी योग में रीढ़ की हड्डी के दरम्यान जो चक्र होते हैं, उन चक्रों को जाग्रत करना पड़ता है और जितने भी चक्र हैं वे सब-के-सब सोये हुए हैं। सबसे पहला चक्र है मूलाधार। दूसरा चक्र है रीढ़ की हड्डी के अन्त में, जिसको आप लोग कह सकते हैं – सेक्रल प्लेक्सस, स्वाधिष्ठान चक्र। तीसरा होता है नाभि के पीछे, इसको कहते हैं – सोलार प्लेक्सस, मणिपुर चक्र। चौथा होता है दिल के पीछे, जिसको कार्डियक प्लेक्सस, अनाहत चक्र बोलते हैं और इसके बाद होता है गर्दन पर, जिसे सर्वाइकल प्लेक्सस, विशुद्धि चक्र कहते हैं और पीछे पीनियल ग्रन्थि पर जो चक्र होता है, उसे हम लोग कहते हैं आज्ञा चक्र। अगला होता है क्रेनियम में, उसको बिन्दु बोलते हैं। इसके बाद होती है पीयूष ग्रन्थि, जिसे सहस्त्रार बोलते हैं। ये मुख्य चक्र हैं।

इन चक्रों में शक्ति छुपी हुई है। जो तन्त्र और कुण्डलिनी योग के साधक हैं वे अनेक क्रियाओं के द्वारा इसको जगाते हैं और जगाकर अपने शरीर में परिवर्तन लाते हैं। कुण्डलिनी योगी कहते हैं कि शरीर में जो नाड़ियाँ हैं, उन नाड़ियों में अगर हम परिवर्तन ला सकें तो एक विशेष मानसिक अवस्था प्राप्त कर सकते हैं। यह बात सच्ची है। आदमी भाँग-गाँजा पीता है तो उसका मस्तिष्क अपने आप बदल जाता है। शराब पीने वाले का भी मस्तिष्क अपने आप बदल जाता है, नशा लेने वाले का भी मस्तिष्क बदल जाता है। यह रासायनिक क्रियाओं के माध्यम से होता है।

हमारे शरीर में कई ग्रन्थियाँ हैं और उन ग्रन्थियों में से एक प्रकार की शक्ति निकलती है। वह शक्ति कई भागों में रहती है। उन ग्रन्थियों से कुछ रस भी निकलते हैं। जैसे खेचरी मुद्रा के द्वारा, जिसमें जीभ को उल्टा करके तालु के अन्दर डालते हैं, अमृत रस निकलता है। तालु के आन्तरिक भाग को कपाल कुहर बोलते हैं, जो नाक के नीचे की तरफ है। उसकी दीवारों में ग्रन्थियों के कुछ नाड़ी केन्द्र होते हैं। उन नाड़ी केन्द्रों को जाग्रत करते हैं। जब जाग्रत कर लेते हैं तब उनमें से जो रस निकलता है उस रस को अमृत मानते हैं। उस अमृत का शरीर में उपयोग होता है। कैसे उपयोग होता है?

कबीरदासजी कहते हैं कि इस रस को लेने के बाद एक उन्मनी मुद्रा आती है। उन्मनी का अर्थ होता है न जागृति, न सुषुप्ति, न निद्रा और न जागना। एकदम शान्त भाव से आदमी बैठा है। उसके विचार थम जाते हैं। उनका हिलना बन्द हो जाता है, वे शान्त हो जाते हैं। यह उन्मनी मुद्रा है। अतः कुण्डलिनी योगी और हठयोगी यह मानते हैं कि नाड़ियों मे परिवर्तन करके या रासायनिक परिवर्तन करके हम अपने शरीर को समाधि की स्थिति में ला सकते हैं। चक्रों की साधना से ध्यान में गहराई आयेगी।

अब हम अगले विषय पर आते हैं कि चक्र की भी साधना शुरू में कर लेनी चाहिए, जिससे कि भगवान की उपासना गहरी हो सके, उसमें हमारा मन ज्यादा लगे। किसको किस चक्र पर ध्यान करना है, यह कहना बहुत कठिन है, लेकिन दो चक्र हमारे यहाँ श्रेष्ठ माने जाते हैं। सबसे सरल है भ्रूमध्य, जो आज्ञा चक्र का केन्द्र है। अपने मन को भ्रूमध्य में लगाओ तो प्रकाश की उत्पत्ति होती है, मतलब उजाला दिखता है। आँखें बन्द करने पर आपको जो अन्धेरा दिखता है वह अन्धेरा उजाला बन जाता है। मैंने ज्योति नहीं कही, मैंने केवल उजाला और प्रकाश कहा। आँखों को बन्द करने पर जो अन्धेरा दिखता है, उसको आप समझ लो कि रात का अन्धेरा है। वह अन्धेरा दूर होना चाहिए। आँखें बन्द करके उजाला मालूम पड़ना चाहिए।

दूसरा स्थान है नासिका के अग्र भाग पर। यह भी ध्यान की बहुत सुन्दर जगह है। बैठकर नाक के ठीक सामने के भाग में ध्यान करना 'नासिकाग्र दृष्टि'

कहलाता है। इधर-उधर कहीं मत देखो, केवल यहीं पर देखो। यह दूसरा केन्द्र है। तीसरा केन्द्र है अनाहत। इसके अलावा अनेक केन्द्र हैं। जिसको जैसा ठीक लगे, जैसे उसके शिक्षक या गुरु उसे बतलावें उसी तरह से करना चाहिए। मूलाधार में भी ध्यान किया जा सकता है। मूलाधार चक्र बहुत संवेदनशील होता है। मूलाधार का ध्यान बहुत शक्तिशाली होता है, इसलिए मूलाधार का ध्यान सबको नहीं कराते। मूलाधार में ध्यान करने से ऐसा लगता है मानो विस्फोट होने वाला है। ऐसे-ऐसे अनुभव होते हैं कि कुछ समझ में नहीं आता।

वैसे आज्ञा चक्र सबसे महत्त्वपूर्ण है। मूलाधार में ध्यान करने से पशु चेतना का विस्फोट होता है। स्वाधिष्ठान में ध्यान करने से भी पशु चेतना विस्फोट करती है, यानी बाहर निकलती है, पर आज्ञा चक्र देव-चक्र है। मानव चक्र है अनाहत। मणिपुर चक्र को कहते हैं पृथ्वी लोक का चक्र। इसके नीचे के चक्रों को पशु लोक या पाताल लोक के चक्र कहते हैं। ऐसे ही नाम दिए गए हैं क्योंकि तीन प्रकार की चेतना होती है – पशु चेतना, मनुष्य चेतना और ईश्वर चेतना। पशु चेतना को नरक कह दिया, मनुष्य चेतना को भू-लोक और देव चेतना को स्वर्ग लोक कह दिया।

आज्ञा चक्र स्वर्ग लोक से सम्बन्ध रखता है। वहाँ अच्छा अनुभव होता है, प्रकाश का अनुभव होता है, मन लगता है और थोड़ी-थोड़ी शून्यावस्था भी आती है। कभी-कभी निर्विचार अवस्था भी आती है और कई अच्छी बातों का अनुभव होता है। लेकिन जो साधक बहुत अधिक तमोगुणी हैं तथा जिन साधकों के मन में काम, क्रोध, लोभ बहुत हैं, उन लोगों को थोड़ी मूलाधार की साधना करनी चाहिए, मूलाधार का ध्यान करना चाहिए। मूलाधार चक्र को जगाने के लिए कई प्रकार की क्रियायें हैं, जैसे ताड़न क्रिया, मूलबन्ध, सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन और महामुद्रा। इसी प्रकार के और भी अभ्यास हैं। इन क्रियाओं को करके किसी तरह मूलाधार को जगाने के बाद एक विस्फोट अवश्य देखना चाहिए, किन्तु इतना निश्चित है कि बिना भोग भोगे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मुक्ति के लिए, भगवान का अनुभव करने के लिए या ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों का भोग नितान्त आवश्यक है। दुनिया में जो भोग बने हैं, ये तुम लोगों को नरक में डालने के लिए थोड़े ही बने हैं, ये तो तुम्हारे विकास की मंजिल के अनिवार्य कदम हैं। जिसको तुम लोग भोग कहते हो, वासनामय जीवन कहते हो, उसको निम्न दृष्टिकोण से देखते हो, वे छीः नहीं

हैं, वे तो विकास के मार्ग में जाने के लिए शर्तें हैं। इसीलिए भोग का मार्ग बना है। इन्द्रियों के विषयों के साथ एक होने को भोग कहते हैं। भोग माने क्या? खाली रसगुल्ला खाने को भोग थोड़े कहते हैं। जब इन्द्रियों और विषयों का योग हो, तब उसे भोग कहते हैं। जब इन्द्रियों का विषयों से वियोग हो तो योग कहते हैं। बस हो गई योग और भोग की परिभाषा!

ईश्वर-भक्ति के लिए जितनी बातें मैंने बतलायी हैं उनको मैं फिर से दुहरा दूँ। पहला, भगवान में मन कैसे लगे? तो सबसे पहले अपने मन के साथ अपना व्यवहार सुधार लो और उसके साथ समझदारी का व्यवहार करो। दूसरा, अपने शरीर में जो चक्र हैं, उन चक्रों में से किसी एक को हठयोग की विधि से, कुण्डलिनी योग की विधि से या मन्त्रयोग की विधि से जाग्रत करना। ये उपाय अगर हम लोग कर लेंगे, तो मैंने बतलाया कि मन को समझदारी आ जायेगी। दूसरा उपाय चक्रोत्थान या चक्र शुद्धि कहलाता है। ये दो उपाय अगर आप पकड़ लेंगे तो दिन-प्रतिदिन ईश्वर के प्रति आपका अनुभव बढ़ता जायेगा। ईश्वर हमारी आत्मा है, हमसे दूर नहीं है। ईश्वर और हमारे बीच में एक ही बाधा है। इसी को कबीरदासजी ने कहा था – घूँघट के पट खोल, तुझे पिया मिलेंगे।

जाग जुगत सो रंग महल में, पिय पाये अनमोल॥
घूंघट पट खोल रे, तो को पिया मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे॥
धन जोवन को गरब न कीजै, झूठा पचरंग बोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे॥
जागू जुगुत सों रंगमहल में, पिया पायो अनमोल रे।
कह कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

पिया का अर्थ होता है ईश्वर और घूँघट का अर्थ होता है माया का अवगुंठन। रंग महल का अर्थ होता है अन्तरंग चेतना और 'जाग जुगुत सो रंगमहल में' का अर्थ होता है – उनको रंगमहल में जागते रहना है। जागना कैसे है – युक्ति के साथ। 'जागू जुगुत सो रंगमहल में, पिया पायो अनमोल' का अर्थ है, फिर वहाँ आपको अनमोल ईश्वर चेतना की प्राप्ति होगी। इसी साधन के द्वारा हम ईश्वर की भक्ति कर सकते हैं।

– 1977, बालाघाट, मध्यप्रदेश

श्री स्वामीजी का दिव्य जीवन और शिक्षाएँ

दिनेश खरे, दुर्ग

किसी गाँव की छोटी-सी कुटिया में एक साधु रहता और ईश्वर की आराधना, जप-तप तथा ध्यान करता था। ईश्वर की कृपा से उसके लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम हो जाता था। एक दिन जब साधु अपनी आँखें बंद कर ईश्वर की ओर ध्यान लगाने की कोशिश कर रहा था, तब उसके कानों में दूर से आती किसी रोते-बिलखते बच्चे की चीख सुनाई देती है। रुदन करते हुये पड़ोस के बच्चे की ओर साधु का ध्यान केंद्रित हुआ और कोमल हृदय में प्रतिक्रिया हुई। मन में विचार प्रकट हुये, 'क्या बच्चा भूख से व्याकुल है? क्या वह बालक ठंढ से ठिठुर रहा है? क्या आज भी उस घर में चूल्हा नहीं जला? क्या उस घर में खाने के लिए अन्न नहीं है?'

जप-तप से पवित्र हुआ हृदय द्रवित हो उठा। साधु में आत्मभाव जागृत हुआ। उसने तुरंत उठकर अपनी कुटिया में प्रवेश किया, अपने लिए रखी दो वक्त की रोटियाँ ले आया और उस रोते-बिलखते बच्चे को खिला दी, उसके तन पर अपने वस्त्र ओढ़ा दिये। बच्चा शांत होकर, साधु की ओर एकटक

निहार रहा था। तृप्त बच्चे के शांत स्वरूप में साधु को ईश्वर के दर्शन हुये। यही है ईश्वर की सच्ची सेवा, मानवता की सेवा। भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी देना, जो वस्त्रहीन है उन्हें वस्त्र देना, दीन-दुःखियों को सांत्वना और उत्साह देना, दूसरों के दुःख-दर्द और उनकी आवश्यकताओं का ख्याल रखना, गिरे हुए को उठाना, असहाय को सहारा देना, अंधे और भटके हुये को राह दिखाना, अशिक्षितों को शिक्षा देना, बीमार-लाचार मरीजों को दूध-दवाई, फल आदि देना, पशु-पक्षियों की रक्षा करना, ये सब सेवा के प्रकार हैं।

ये सब सेवा के मार्ग हमारे ऋषि-मुनियों, साधु-संतों, गुरुजनों, परमपूज्य स्वामी शिवानंद जी, स्वामी सत्यानंद जी और अन्य महान् लोगों ने बताए हैं। हमारे पूज्य श्री स्वामी सत्यानंद जी ऐसे ही महान् संतों की श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने अपना पूरा जीवन दूसरों के उत्थान में, दूसरों की सेवा में, परमार्थ में अर्पित किया। उनकी अवधारणा थी कि पुस्तक, पोथी-पुराण पढ़कर पंडित-ज्ञानी कहला सकते हैं, पूजा-पाठ से धार्मिक-आध्यात्मिक हो सकते हैं, जप-तप-ध्यान से योगी हो सकते हैं, ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन जब तक तुम्हारे अंतर्मन की गहराई में अपरिचित जरूरतमंदों के लिए सेवा की भावना प्रकट नहीं होती, जब तक दूसरों की पीड़ा को देखकर तुम्हारा मन द्रवित नहीं होता, तुम्हारे मन में प्रतिक्रिया नहीं होती, जब तक तुम अपने-पराये, ऊँच-नीच की परिभाषा को बदलकर निःस्वार्थ भाव से सेवा नहीं करते, तब तक तुम्हारे पंडित होने, धार्मिक होने, आध्यात्मिक होने का क्या फायदा? तुम्हारे योगी होने का क्या प्रयोजन, तुम्हारे ईश्वर-दर्शन का क्या औचित्य?

उनका व्यक्तित्व

स्वामी सत्यानंद जी सत्य और आनंद की प्रतिमूर्ति थे। सत्य का रूप शाश्वत है, अनंत है, वह निखरकर अपने आप ही प्रकट हो जाता है। उसे किसी की स्तुति की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके गुरु स्वामी शिवानंद जी ने उनके बारे में कहा कि 'सत्यम् चार लोगों का काम अकेले ही कर लेता है' और उन्होंने उन्हें 'ज्ञानयज्ञोपभृत राजयोगी' नाम प्रदान किया, अर्थात् जो अहंकार का बलिदान देकर, पूर्णरूपेण शुद्ध, आध्यात्मिक ज्ञान में स्थित हुआ हो, जो स्वतंत्र, अनुशासित, निडर और अटल निष्ठावान् हो, राजयोग के पथ पर प्रगतिशील हो। उनका व्यक्तित्व बहुत ही सरल, छल-कपट रहित, अहंकार

रहित, निर्भय बालक के समान था। छोटे-से बालक की तरह उन्हें स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं मालूम होता था। उनकी दृष्टि अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े से परे थी। जात-पात, सुख-दुःख, मान-अपमान, निंदा-स्तुति, मित्र-शत्रु, सब समान थे। वैराग्य और त्याग के अभ्यास से उन्होंने शांति को प्राप्त किया। द्वेष भाव से रहित, स्वार्थ रहित वे सबके प्रेमी थे।

उन्हें जैसा जीवन मिला, जैसी परिस्थितियाँ मिलीं, उन्हें स्वीकारा। उनकी कोई पसंद नहीं, किसी से लगाव नहीं, सिवाय ईश्वर के प्रति अनुराग के। उनके हृदय में सतत् भगवन्नाम का स्मरण होते रहा, वे सदा संतुष्ट रहते थे। उन्हें दो वक्त की रोटी की भी चिंता नहीं थी। श्री स्वामीजी ऐसे महायोगी, महादानी, वेदांती, महान् त्यागी, तपस्वी थे कि उन्हें अपने निवास स्थान का यदि त्याग करना पड़ जाए, तो वे नील-गगन की छाँव में रहकर भी भगवान की भक्ति, मानवता की सेवा कर सकते थे।

उनकी शिक्षाएँ

श्री स्वामीजी कहा करते थे कि 'प्रेम मात्र एक भावना है, इस भावना को अगर हम ईश्वर की ओर मोड़ दें तो वह भक्ति बन जाती है और इसी भावना को अगर हम संसार की ओर मोड़ दें, संसार के विषयों से जोड़ दें, संसार के अनुभवों से जोड़ दें तो वहाँ पर राग और द्वेष के रूप में प्रेम दिखाई देता है। आखिर राग

भी तो प्रेम ही है न? कुछ चीजें हमको अच्छी लगती हैं, हमें आकृष्ट करती हैं, आखिर वह भी तो प्रेम है न? और जो चीजें हमें अच्छी नहीं लगती, जिनसे हम दूर भागते हैं, जिनको हम दूर करते हैं, वह भी प्रेम का ही अभाव है। सुख से प्रेम है, इसलिए सुख की कामना करते हैं, दुःख से प्रेम नहीं है, इसलिए दुःख को हटाते हैं। बीवी से प्रेम है, इसलिए उसका ख्याल करते हैं, लेकिन सड़क पर चलने वाली किसी भिखारिन से तो प्रेम नहीं है, इसलिए वह हमारे लिए कुछ नहीं है। प्रेम हमेशा मनुष्य को दूसरे के साथ जोड़ता है और इसी प्रेम को अगर हम संसार से हटाकर भगवान से जोड़ दें तो क्या होगा? आप संसार चक्र से मुक्त हो जाओगे।'

तुलसीदास जी को यही बात कही थी उनकी पत्नी ने, 'जितना प्रेम, जितना अनुराग आपका मुझ पर है, अगर उसका एक हिस्सा भी भगवान के साथ हो जाता तो आप संसार से मुक्त हो जाते।' तुलसीदास जी की आँखें खुल जाती हैं और वे तुरंत निकल पड़ते हैं। उसके बाद वे फिर वापस आए ही नहीं। उन्होंने अनुभव किया कि जब प्रेम भगवान से हो जाय तब फिर संसार अनावश्यक है।

उनकी दिव्य दानशीलता

हमने दानशील व्यक्तियों के विषय में अनेक कहानियाँ सुनी एवं पढ़ी हैं, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से श्री स्वामी सत्यानंद जी के अलावा किसी ऐसे दूसरे व्यक्ति को नहीं देखा। रिखियापीठ से कोई भी व्यक्ति उनके दर्शन करके खाली हाथ नहीं लौटता था। वे दान देने में इतने संवेदनशील थे कि किसी को हाथ पसारने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वे पहले से गाँव के लोगों की खबर लेकर उनकी मदद कर देते थे। साइकिल, साइकिल रिक्शा, ऑटो रिक्शा, हाथ ठेला, सिलाई मशीन, कपड़े, पुस्तक-कॉपियाँ, पेन-पेंसिलें, गाय-बैल, खेती के लिए हल-कुदाल-फावड़ा, किचन की कढ़ाई, थाली, लोटा, गिलास आदि जितनी भी सामग्री, जो घर-गृहस्थी, व्यवसाय में उपयोग होती, सभी वे यज्ञ प्रसाद के रूप में दान देते थे। बुजुर्गों को मासिक पेंशन, विधवा महिलाओं को प्रतिदिन रामायण पाठ किए जाने का पारिश्रमिक, नववधुओं को सौभाग्यसूचक सोलह शृंगार की सामग्री भी प्रसाद के रूप में देते थे।

दान के संबंध में श्री स्वामी जी की अवधारणा काफी स्पष्ट थी। उनका दृष्टिकोण सरल था कि यदि वे किसी को साइकिल दान में देते और वह उसे

बेचकर पैसे अपनी जेब में डाल देता तो वे उसकी चिंता नहीं करते थे। वे यथार्थवादी थे, वे कहते थे, 'भगवान ने हमें जो कुछ दिया है, उस पर तो कोई शर्त नहीं लगा रखी है और यदि हम उनका दुरुपयोग करते हैं तो भी ईश्वर हमें सजा नहीं देते, फिर हम क्यों चिंता करें? वास्तविक उदारता तो बेशर्त देना है। यही तो भगवान का दर्शन है। पुराणों, शास्त्रकारों का भी दर्शन है – 'लक्षं विहाय दातव्यम्', अर्थात् लाख काम छोड़कर भी दान करने का मौका अगर आ जाय, तो दान करना चाहिए।'

धन का दान करें, धन न हो तो अन्न का दान करें। प्यासे को पानी का प्याला ही पिला दें, लेकिन कुछ-न-कुछ अवश्य दान करें। शरीर नाशवान् है, मृत्यु कब आ जाये, निश्चित नहीं। इसलिए कुछ देना सीखें। प्रभु के लिए यदि शरीर भी देना पड़े, तो दे सकें और अंत में हमारे मुख से ईश्वर का नाम निकले तो समझें हमें मोक्ष मिल गया। इसलिए हरि के स्मरण का इतना महत्त्व है। 'कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत', शास्त्रों में कहा गया है कि करोड़ काम छोड़कर भी हरि का स्मरण करो, भगवान का नाम लो, इस अमूल्य जीवन का सदुपयोग करो। हमारे पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी सत्यानंद जी भी तो यही कहते थे कि नाम संकीर्तन प्रभु की आराधना का सबसे सरल उपाय है –

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

चित्त-शुद्धि

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गृहस्थ आश्रम के लिए कोई मुख्य साधना नहीं होती। साधना व्यक्ति-मूलक होती है, आश्रम-मूलक नहीं। अब जैसे कौन-सी शिक्षा अच्छी है, यह कहा नहीं जा सकता। शिक्षा तो व्यक्ति-मूलक होती है। उसी तरह हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग प्रकार की साधना उपयुक्त होती है और एक ही साधना को अलग-अलग ढंग से लेना पड़ता है। फिर उस साधना को भी उम्र के मुताबिक थोड़ा कम-ज्यादा करना पड़ता है। किसी-किसी के लिए प्राणायाम अस्सी सालों तक चलता है। फिर उसको प्राणायाम छोड़ना पड़ता है, आसन छोड़ने पड़ते हैं, ध्यान करना पड़ता है। सबको अपनी परिस्थिति देखनी है। अगर व्यक्ति अकेला हो, तब एक किस्म की साधना है। अगर परिवार के साथ हो, तब दूसरी साधना है। इसलिए साधना परिस्थिति के अनुसार निश्चित होती है, पर उस साधना का एक ही मूल तत्त्व है, एक ही लक्ष्य है – अंदर देखना। नारायण की पूजा, हनुमान की पूजा, राम की पूजा या कृष्ण की पूजा, ये तो नाम हैं, रास्ते हैं, मार्ग हैं। असली चीज है – अपने अंदर देखना, बस।

अंदर देखने से भी महत्त्वपूर्ण एक और चीज है। तुम्हारे और तुम्हारे अंदर के बीच में एक पर्दा है, एक काँच है। या तो वह धुँधला है, या टूटा है, या काला है, या बिल्कुल साफ है। अगर एकदम साफ रहा, तब तो तुम खुद को देख सकते हो, क्योंकि काँच साफ है। अगर वह साफ नहीं रहा और तुम गुरु कृपा, भगवत् कृपा या किसी साधना के द्वारा इत्तेफाक से अंदर चले जाओ, तो तुम को वहाँ गड़बड़ी दिखाई देगी। किसी को भूत दिखाई देगा, किसी को आवाज सुनाई देगी, किसी को कुछ और दिखाई देगा। इसका मतलब अभी भी गड़बड़ी है अंदर वाले शीशे में, जिसको हम लोगों के यहाँ चित्त कहते हैं।

जो मुखड़ा देखन चाहिए, तो दर्पण मांजत रहिए।
जो दर्पण लागे काई, तो मुखड़ा लखी न जाई॥

यह चित्त चेतना का पर्दा है। कोई उसको अहंकार कहते हैं, कोई जीव कहते हैं, कोई माया कहते हैं। उसे योग-शास्त्र और वेदान्त ने बहुत समझाया

भी है, पर वह चीज क्या है, किसी को पता नहीं। अलग-अलग नाम हैं, पर वह एक वास्तविकता है। तुमको रात में सपने क्यों आते हैं? इसलिए कि तुम्हारे और उसके बीच में पर्दा है। असली चीज तो दिखती नहीं है, क्या दिखता है? उधर घोड़ा दौड़ रहा है तो इधर गाय चर रही है। उधर आदमी बैठा हुआ है, फिर इधर भैंस दिखती है। दृष्टि धुँधली रहती है।

इसलिए साधना करने के पहले चित्त को शुद्ध करना आवश्यक है। चाहे क्रियायोग की साधना हो या प्राणायाम की साधना हो या रजनीश, महेश योगी या सत्यानन्द की कोई साधना हो, जो भी साधना करनी है उसके पहले चित्त-शुद्धि आवश्यक है। चित्त-शुद्धि के लिए सबसे पहली चीज है निष्काम सेवा। दूसरों के लिए काम करो, अपने लिए नहीं। यह संत-महात्माओं ने स्पष्ट कर दिया है। गीता ने भी यही कहा कि कर्मयोग करो। हमारे गुरुजी उसे सेवा कहते थे। स्वामीजी कहते थे, सेवा पहला, प्रेम दूसरा और दान तीसरा कदम है। तभी शुद्धता आती है – *चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये*।

सेवा के बिना, दूसरों से प्रेम किए बिना, आत्मभाव के बिना और दूसरों की मदद किए बिना चित्त की शुद्धि नहीं होती है। और चित्त की शुद्धि हुए बिना अगर तुम अंदर जाओगे, तो तुमको भूत ही दिखाई देने वाला है। परन्तु अपने आप को, जो 'मैं' है, जो 'सोऽहं' बोलता है, जो 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलता है, उसे अगर देखना है तो पहले चश्मे की या दर्पण की सफाई होनी

चाहिए, और सफाई का रास्ता है सेवा, जो वास्तव में बहुत कठिन है। सेवा धर्म कठिन ही नहीं, अति गहन है। गहन का मतलब, समझ में नहीं आता। *सेवाधर्मः परमगहनः, योगिनामपि अगम्यः* – योगियों को भी प्राप्त नहीं होता है।

महात्मा गाँधी की किताबें अगर तुम पढ़ो तो समझ में नहीं आता कि एक तरफ यह आदमी देश की आजादी के लिए इतना चिन्तित है, पर दूसरी तरफ बात करता है कुछ और। उपवास करता है, कोढ़ियों की सेवा करता है, मेहतरों के यहाँ रहता है! उसका आजादी से क्या मतलब है? आजादी का तो मतलब होता है जन-आंदोलन, हल्ला-गुल्ला, 'इंकलाब जिन्दाबाद' वगैरह की नारेबाजी, यही न! पर यह आदमी बोलता है गाय की सेवा करो, भेड़-बकरी की सेवा करो, कोढ़ी की सेवा करो, हरिजन की सेवा करो, बीमार की सेवा करो। इन सबका आजादी से क्या मतलब है? मतलब यह है कि इन चीजों को किए बिना गाँधीजी की चित्त-शुद्धि नहीं हो सकती और जब तक गाँधीजी की चित्त-शुद्धि नहीं होगी, तब तक उनके अंदर अंतर्ज्ञान नहीं जाग सकता। आखिर गाँधीजी को कितना बड़ा अंतर्ज्ञान मिला, कभी अंदाज लगाया है क्या? गाँधीजी के अंदर का आईना जब साफ हो गया, तब उनको जो दिखाई दिया, उनको जो विचार आया, क्या वह किसी के दिमाग में आज तक आया है?

तुम तीन-चार दिन बिना सोये रह सकते हो, दो-तीन दिन बिना खाये रह सकते हो, एक-दो दिन बिना पीये रह सकते हो, पर कपड़े के बिना एक मिनट भी रह सकते हो क्या? आदमी के जीवन का साथी वस्त्र है और दुनिया में सबसे ज्यादा बिक्री भी इसी की होती है। गाँधीजी ने सूत्र पकड़ लिया। सूत हर इन्सान से जुड़ा हुआ है, बचपन से कफन तक। लंगोटी से लेकर कोट तक। गाँधीजी के सत्याग्रह का मंत्र था खादी, और कुछ नहीं। उनको यह विचार मिला शुद्ध चित्त में, उनको अंतर्ज्ञान प्राप्त हुआ। अंतर्ज्ञान का मतलब होता है, परमात्मा के द्वारा दिया हुआ ज्ञान या विचार। उनके आंदोलन की शुरुआत का आधार केवल खादी और चरखा था, और कुछ नहीं। उनकी किताबें पढ़नी चाहिए, बहुत साहित्य है उनका। हमने सब पढ़ा है, हम तो उसी जमाने के हैं। हम बचपन में उनके आश्रम में रहे भी हैं। साबरमती और वर्धा में तीन-तीन महीने रहे हैं।

चित्त-शुद्धि के बिना साधना का कोई महत्त्व नहीं है, सीधी बात बोल रहा हूँ तुमको। इसलिए जब हम अपने गुरुजी के यहाँ पहले दिन सामने खड़े हुए, तब उन्होंने कहा, 'सेवा करो, मेहनत करो। प्रकाश अपने आप तुम्हारे पास आएगा, क्योंकि प्रकाश तो तुम्हारे अंदर है।' जब तक तुम अपने लालटेन को

साफ नहीं करोगे, तब तक उसका प्रकाश बाहर निकलेगा कैसे? जो तुम्हारे अन्दर ज्योति है, वह भूत तो नहीं है। यहाँ बहुत लोगों को भूत दिखता है। वे डरते हैं, बोलते हैं, 'भूत दिखता है।' हम कहते हैं, 'अरे! भूत नहीं दिखता है। कोई साधना तुमने गलत की है और जबरदस्ती अंदर चले गए हो। इसलिए अंदर जाकर तुमको भूत ही दिख रहा है।' यह भूत वगैरह कुछ नहीं है। आत्मा ही भूत, प्रेत या जानवर के रूप में दिखती है। वही आत्मा स्त्री के रूप में, डकैत के रूप में, सुख-दुःख के रूप में तुमको दिखती है। सब सपनों में वही आत्मा है। माण्डूक्य उपनिषद् में यही तो साफ-साफ समझाया है।

इसलिए जो भी साधना तुमको करनी है, करो, पर पहले अंदर साफ कर लो। नहीं तो अंदर बड़ी गड़बड़ होती रहेगी। विषाद छाने लगता है। कोई बोलता है, मेरे को यहाँ एक आवाज आ रही है, कोई बोलता है मेरे पेट में कोई बैठा हुआ है, कोई बोलता है सत्यानन्द जी मेरे को बुला रहे हैं। कोई मेरे को देखकर कहता है, 'स्वामीजी, मैंने आपको दाढ़ी वाले वेश में देखा है। आपका शरीर ब्रह्मा-विष्णु जैसा था।' मैंने कहा, 'फालतू बातें मत करो, तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। बैठकर पहले अपने लालटेन को साफ करो।'

तुमको एक ही चीज जाननी चाहिए। और कुछ नहीं करना है, केवल आत्मा की, मन की शुद्धि करनी है। दूसरों की सेवा करो, दो रोटी भगवान सबको देगा। हमको स्वामीजी कहा करते थे, 'तुम दूसरों की सेवा करो, रोटी भगवान देगा।' भगवान ने हमें खूब रोटियाँ दी हैं, और हम खिलाते जा रहे हैं!

त्राटक का महत्त्व

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

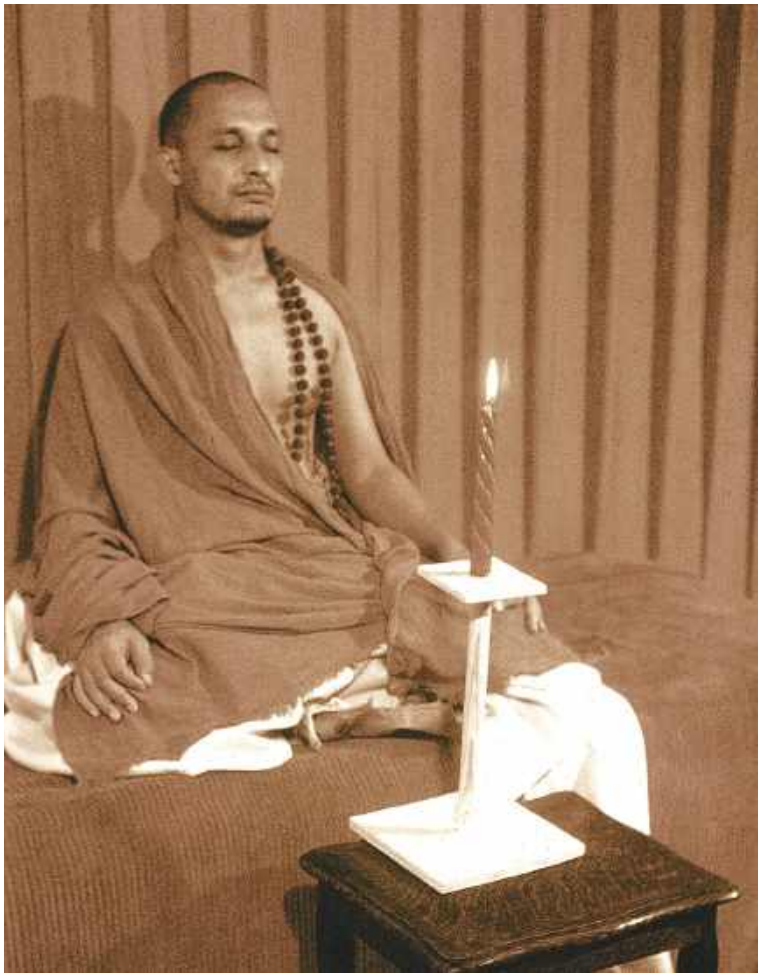

त्राटक का अर्थ होता है, लगातार टकटकी लगाकर देखना। त्राटक के अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है। मन बहुत शक्तिशाली है, लेकिन इच्छाओं और ऊर्जा को नष्ट करने वाले खेल-तमाशों आदि के माध्यम से मन की यह शक्ति चारों ओर बिखर गई है। यदि हम इस बिखरी हुई मानसिक शक्ति को आध्यात्मिक

या भौतिक किसी भी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयोग में लायें तो हमें निश्चित रूप से सफलता मिलेगी। हम निरन्तर ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त सूचनाओं की चपेट में रहते हैं। अनगिनत विचार हमारे मन से होकर गुजरते रहते हैं और उनके प्रति हम अनभिज्ञ ही रहते हैं। अपनी मानसिक क्रियाशीलता के प्रति हम तभी जागरूक होते हैं जब हम विश्रांत होकर कुछ हद तक इन्द्रियों के प्रति अपनी उन्मुखता को कम कर देते हैं।

किसी एक आंतरिक या बाह्य वस्तु पर एकाग्र होने के लिए मन को नियंत्रण में रखना होगा ताकि वह विभ्रान्त न हो सके। इसका एक उपाय यह है कि एकाग्रता के लिए किसी ऐसी चीज का चुनाव कर लें जो मन को शान्ति दे और उसे स्थिर बनाये। इस उद्देश्य से 'ॐ' मंत्र, पुष्प, गुरु का चित्र, कोई देवी-देवता या मोमबत्ती की लौ में से कुछ भी चुना जा सकता है। त्राटक का अभ्यास प्रारम्भ करने के लिए मोमबत्ती की लौ सबसे आसान और व्यावहारिक है।

त्राटक की दो अवस्थायें हैं, बाह्य त्राटक और अन्तर्त्राटक। बाह्य त्राटक में मन को बाह्य पदार्थ पर एकाग्र किया जाता है। अप्रशिक्षित मन के लिये यही आसान है, क्योंकि मन बाह्य पदार्थों से जुड़ा रहना अधिक पसन्द करता है। जब हम किसी आंतरिक प्रतीक या बिन्दु पर ध्यानस्थ होते हैं तब मन तुरन्त ऊब कर विचलित होने लगता है।

अन्तर्त्राटक में मन को अन्तर्मुख होने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करते रहने पर मन की शक्ति व्यय होती है। लेकिन जब इन्द्रियों से हटाकर आंतरिक वस्तु पर उसे केन्द्रित किया जाय तब उसे शक्ति प्राप्त होती है।

त्राटक के अभ्यास से अनेक लाभदायक प्रभाव होते हैं। त्राटक का नियमित अभ्यास ध्यान और स्मरण शक्ति बढ़ाने में मदद करता है। यह आँखों की मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाकर दृष्टि-शक्ति बढ़ाता है। त्राटक से आंतरिक ऊर्जा का भंडार खुल जाता है। भारत में रहस्यमयी गुप्त शक्तियाँ प्राप्त करने के लिये त्राटक सबसे महत्त्वपूर्ण अभ्यास माना जाता है। ईसाइयों में भी प्रतिमाओं, पवित्र चित्रों और धार्मिक प्रतीकों पर त्राटक किया जाता है, यद्यपि वे इस तथ्य के प्रति जागरूक नहीं हैं।

त्राटक से एकाग्रता बढ़ती है, क्योंकि इससे चेतन ऊर्जा को एक बिन्दु की ओर उन्मुख किया जाता है। यह अभ्यास स्वतः ध्यान की ओर ले जाता

है। प्रारम्भिक अभ्यासियों को भी कम समय में ही इस प्रकार के अनुभव होने लगते हैं। त्राटक का अभ्यास किसी स्थिर आसन में करना चाहिये। यद्यपि कुर्सी पर बैठकर या सुखासन में भी यह अभ्यास किया जा सकता है, परन्तु अधिकाधिक स्थिर होकर सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन या पद्मासन में ही इसका अभ्यास करना श्रेयस्कर है।

त्राटक बाह्य हो या आंतरिक, इसका अभ्यास करते समय पलकों को झपकाना नहीं चाहिए। दृष्टि भी बिल्कुल स्थिर रहनी चाहिए। प्रारम्भ में यह भले ही कठिन प्रतीत हो, पर अभ्यास के साथ बहुत सरल हो जाता है। इसमें महत्त्वपूर्ण बात है कि आँखों को तनावरहित रहना चाहिये। आंतरिक बिम्बों को देखने के लिये यह आवश्यक है। मन को सिर्फ वस्तु या बिम्ब पर ही टिकाये रखना है। यदि मन अन्य बातें सोचता हो तो धीरे से उसे खींच कर एकाग्रता की वस्तु पर ले आना चाहिये।

कोई भी वस्तु एकाग्रता के लिये उपयोग में लाई जा सकती है। कुछ व्यावाहरिक वस्तुओं का उल्लेख सुझाव के तौर पर किया जा रहा है – मोमबत्ती की लौ, काला बिन्दु, स्फटिक, नासिकाग्र, भ्रूमध्य बिन्दु, शिवलिंग, आकाश, जल, चाँद, तारा, अपनी ही छाया, अन्धकार, शून्य, आईना, यन्त्र या मण्डल, इष्टदेवता या आपका अतीन्द्रिय प्रतीक।

सामान्यतया त्राटक के लिए मोमबत्ती की लौ का उपयोग किया जाता है। इसे कई कारणों से उपयोगी मानते हैं। यह विशेष रूप से प्रभावकारी होती है, क्योंकि यह आँखों और मन के लिए चुम्बक का काम करती है। इसमें चमक होती है, अतः अन्तर्त्राटक का अभ्यास करते समय आँखें बन्द करने के बाद इसका बिम्ब बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। पहले बाह्य त्राटक किया जाता है, इसके बाद अंतर्त्राटक। बाह्य त्राटक का अभ्यास करते समय खुली आँखों से जो लौ दिखाई पड़ती है, उसी के बिम्ब का अंतर्त्राटक में उपयोग किया जाता है।

त्राटक में एकाग्रता के लिए आप जो भी चीज चुनें, उसे आँखों की सीध में एक हाथ की दूरी पर रखिए। अगर दृष्टिदोष हो तो मोमबत्ती को ऐसी जगह पर रखिये कि वहाँ दो न दिखाई पड़ें। अभ्यास करते समय आँखें बन्द करने के बाद बिम्ब इधर-उधर, ऊपर-नीचे भागेगा, इसे किसी एक स्थान पर, जैसे भ्रूमध्य बिन्दु पर केन्द्रित करने का प्रयास करें। नियमित अभ्यास से इस क्रिया में प्रवीणता आती जाएगी।

सुमिरनी

जिज्ञासु ज्ञानशीला

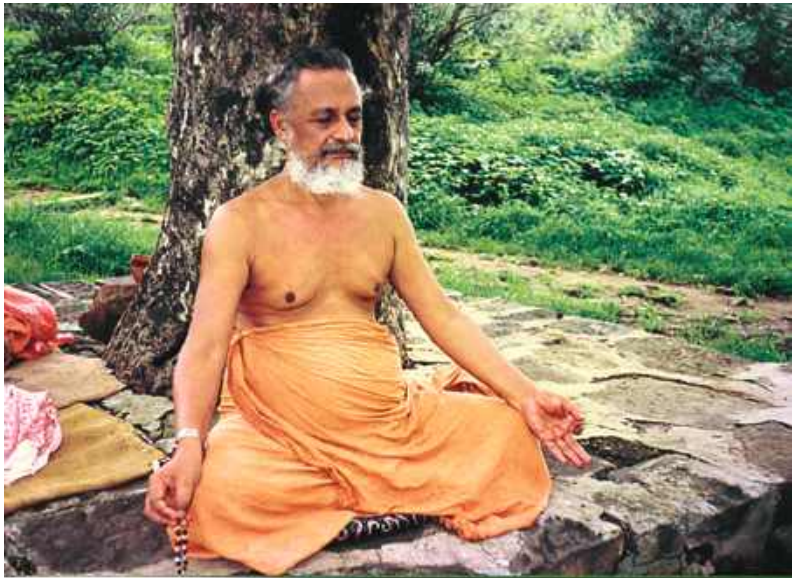

वैरागी मन भागे,
गुरु के पीछे…
बटोरे सत्य सलोने
बाँवर मन को सींचे।
उस गुरु की महिमा को देखो
निर्मल हृदय सागर को देखो...
हाथ पकड़ मेरा वो लेता
गर पथ से हट जाता हूँ मैं।
समय न बाँधे, प्राण न बाँधे
बुद्धि, तत्त्व और ज्ञान न बाँधे…
किसी रेखा में बँधा न है वो
मुक्त वो वायु की भाँति है।

तेज भी वो है, जगमग तम वो
जप तप वो और कर्म भी वो है...
हर लेता जो विकार सारे
कलायुक्त वो ईश्वर है।
सरल है बालक की भाँति वो
माँ जैसी ममता भी उसमें...
पर कठोर भी है वो बनता
जब मैं कहीं पर गुम जाता हूँ।
क्रंदन मेरा हँसना वो है
विचारधारा में भी है समाया...
चिदाकाश पर दर्शन जिसका
सर्वव्यापी वो स्वामी है।

भक्ति विवश मैं तुच्छ हूँ प्राणी
वो अपार वो सद्गुण स्वामी...
मुझको खुद में समा लो भगवन्
अस्तित्वहीन मैं दुर्भागी हूँ।

मैं अर्जुन वो कृष्णा हैं मेरे
मैं सबरी वो राम हैं मेरे...
सार वही बतलाएँगे मुझे
उनके आगमन की राह तकूँ मैं।

साज भी वो है आभूषण वो
कुमकुम वो है ललाट भी वो है...
सीमा है न जिस सौन्दर्य की
उन पर वह ही छाया है।

त्रिगुणों से ऊपर है उठा जो
मिथ्या मोह के पार खड़ा जो...
सत्य असत्य उसके लिए कुछ ना
केवल आत्म ही माने वो।

सुखद दुःखद का वास न जिसमें
युगों-युगों का तेज है जिसमें...
नर विशाल वो आत्म-स्तर से है
हित करता वो हित है करता।

षट्विकार को जीता जिसने
वो वह संयम धारी है...
बैर न है कोई मन से जिसका
संतोष की वो मूरत है।

व्यास वही और समास भी वो है
स्थाई ताल आलाप भी वो है...
गीत जो गाऊँ मैं भी वो है
मेरे दिल के तार भी वो है।

मुझको दे आवाज वहाँ से
है दूर वो द्वार जहाँ पे...
शून्य जहाँ है मन मानव का
वहाँ मुझे वह बुला रहा है।

राग लगा है उससे मेरा
ध्यान धर्म वह सबकुछ मेरा...
वाणी में उसका परिचय मैं
देने में समर्थ न हूँ।

पूर्व जनम का बंधन है ये
अमर अलौकिक संबंध है...
देश काल के परे है ये तो
इसे मैं जानूँ या वो जाने।

मेरी भक्ति को जगाया उसने
मानो एक लिफाफ थमाया...
रुपया पैसा नहीं था अंदर
लिखा था केवल 'चलते जाओ।'

उससे गर मैं दूर हो जाऊँ
मोल मेरे जीवन का न है...
पास मेरे यदि हो वो विराजा
मुझसे बड़ा धनवान न कोई।

प्रेम मेरा यह अनहद है जो
सागर-सा भी गहरा है ये...
जितना अधिक मैं उसको सोचूँ
उतना ही बढ़ जाता है ये।

गद्य, पद्य औ' वाक्य वो राचे
ताल, राग, अनुवाद वो राचे...
उसने राची धरती सारी
पर कर्ता का श्रेय न माँगे।

झूम जाये जोगी की भाँति
खुद का बोध रह जाए ना...
ऐसा प्रेम वो करता प्यारे
तुम भी उसमें रम जाओगे।

मुझमें बैठा देव भी वो है
साम औ' यजुर्वेद भी वो है...
सूर्य चन्द्रमा नवग्रह वो है
हर एक कण में वो ही वो है।

भाव मेरी कविता का वो है
चाव मेरे जीवन का वो है...
जिसके बिन सबकुछ है अधूरा
लवण मेरे जीवन का वो है।

गहन सिद्धि को जिसने साधा
अछूत रेखा को जिसने लाँघा...
चाकर हूँ मैं उस दाता का
जिसने मुझे संवारा है।

हथकड़ियाँ मेरे हाथों की
दे पिछाल पल-भर में सारी...
बन लुहार फिर उन हथकड़ियों का
बना मुझे वो शस्त्र है देता।

परमहंस अवधूत भी वो है
पूर्ण अपूर्ण सम्पन्न भी वो है...
योगनीति को जिसने साधा
वो वह देव-विभूति है।

अलबेला वो अजय भी वो है
संकल्पों का स्वामी है...
सार उसका मैं कैसे वाँचू
शब्दों का अभाव पड़ा है।

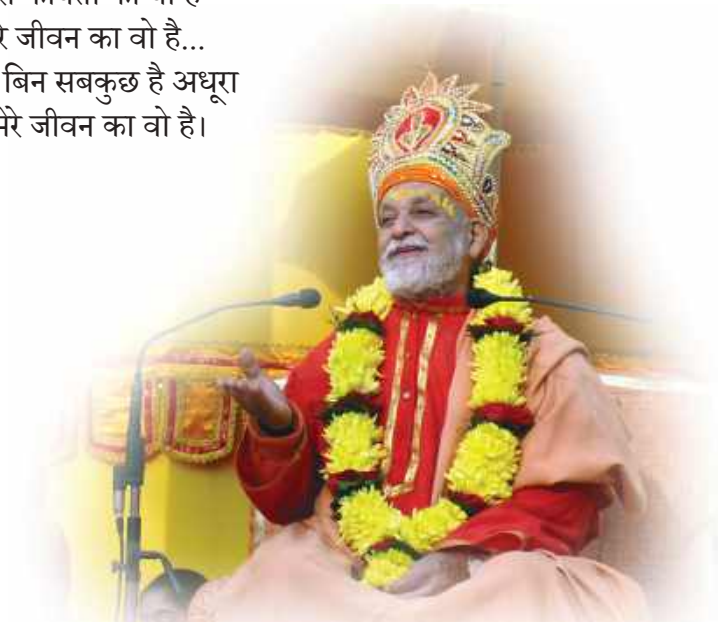

मानस मुक्तावली

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शिष्य चार प्रकार के होते हैं – जो गुरु के पास रहकर गुरु की गौरव-महिमा को जान सकें, जो केवल दूर रहकर ही उसका मूल्य पहचान सकें, जो गुरु के पास होने पर या दूर रहने पर भी मूल्यांकन न कर सकें और सबसे उत्तम कोटि का शिष्य वह है, जो अपने और गुरु के बीच के अन्तर का कभी भी अनुभव नहीं करता। उसके लिए क्या दूर? वह बसता है गुरु के अन्तर में और गुरु भी स्थित है उसके अन्तर में।

भावों के विलास का मूल्य एक कौड़ी भी नहीं, फिर इस विलास को मानने वालों के निर्मूल्य में भी कोई शंका है!

सच तो अपने जानने पर ही निर्भर है। आरम्भ में दुनिया यह नहीं मानेगी क्योंकि वस्तुओं में असत्य का आविष्कार करना तो उसका स्वभाव है। किन्तु सत्य कब तक छिपा रहेगा? सत्य जब शत-शत सूर्यों से भी अधिक ज्योतिर्मय हो उठेगा, तब तीनों लोकों में क्या कोई भी संशय कर सकता है?

तन बदल सकते हो, मन बदल सकते हो, किन्तु आत्मा को भी क्या कोई बदल सकता है? आत्मा तो निर्विकार है। योग्य अधिकारी बनने से पहले तुम उस पर कभी भी अपना आधिपत्य नहीं चला सकते।

सच्ची महानता तो तभी है कि हम गिरकर भी खड़े हो जाएँ।

वही महानता कहलाती है जो मनुष्य के अपराधों पर गौर करने की अपेक्षा उन्हें क्षमा करे।

क्षमा है मनुष्य का कर्त्तव्य, देवों का स्वभाव और दानवों की वैरिण।

संन्यासी का मित्र कौन और बंधु कौन? आवश्यकता क्या और मोह-ममता क्या? उसने किससे क्या लेना? उसे तो देना ही देना है। विपत्ति की बेला में वह किसी को भी मदद दे सकता है और ले सकता है। उस पर कोई ऋण नहीं चढ़ता, फिर बन्धुत्व की क्या आवश्यकता और क्यों?

समस्त प्रपंच का अस्तित्व है केवल दो अक्षरों के छोटे से शब्द 'मोह' पर।

अनुकरण करो तो भीतर और बाहर दोनों का करो। उस अनुकरण से कोई लाभ नहीं, जिसमें आकृति और प्रकृति का मेल नहीं।

सर्वांगीण अनुकरण करो तो केवल संत का।

दान करो तो दिल का।

मनुष्य का यदि कोई मूल्य है तो उसकी मानवता है।

हा मानव, मालिकी की भावना के लिए इतनी पिपासा क्यों? लेने-रखने की इतनी व्याकुलता क्यों? क्या तू अनजान है कि वास्तव में न कुछ आता है, न कुछ जाता है; भेद है केवल रंगरूप का। आवश्यकतानुसार वस्तुओं के नाम और रूप नवीन रूप से मूल्यांकन करवाते हैं। वही उनका सच्चा परिचायक है। फिर भी यह सत्ता-मद क्यों?

विश्व की गति विविधता पर निर्भर है। विश्व के समस्त मानव एक ही विचार और एक ही विधि-विधान की ध्वजा थामे खड़े हो जायें तो?

जो कर्त्तव्य मनुष्य को सच्चा सुख प्रदान न करे, वह कर्त्तव्य है या काष्ठ?

साधारण तथा अशक्य लगती बात को मनुष्य घोट-घोट कर शक्य बना सकता है। कार्य में सफलता पाने के लिए मकड़ी मनुष्य के लिए आदर्श उदाहरण है।

वृद्धावस्था में मनुष्य की इन्द्रियाँ शिथिल बन जाती हैं, स्मृति नष्ट हो जाती है, वह सदैव थका-हारा रहता है।

– योग-वेदान्त के नवम्बर 1955 अंक से साभार उद्धृत

झलकें गुरुजी की

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अभी भी मुझे अपने गुरुजी की झलकें दिखाई पड़ती हैं, बिल्कुल स्पष्ट। मेरे लिए वे मृत नहीं हैं, क्योंकि शरीर की मृत्यु एक परिवर्तन मात्र है। शारीरिक मृत्यु किसी भी हाल में पूर्ण विलय की सूचक नहीं है। मुझे उनकी झलक साफ दिखती है, विशेषकर जब भी मैं इस संसार और यहाँ के संसारी लोगों से तंग आ जाता हूँ। उस समय मन में यह विचार आता है कि प्रिंटिंग प्रेस और आश्रम को बंद कर सब कुछ बेच दूँ। सारी रकम किसी अस्पताल या अनाथालय या किसी अन्य दातव्य संस्था को दान कर इस सबसे मुक्ति पा लूँ। भाड़ में जायें ये लोग। ऐसा मैंने कई बार सोचा और ठीक उसी दिन गुरुजी की झलक दिख जाती। उसमें वे यह नहीं कहते कि ऐसा मत करो, परन्तु कोई नया विचार, कोई नई दिशा देकर मुझे उसे करने के लिए प्रेरित करते हैं!

मेरे ख्याल से यह 1975 की बात थी जब मैं कोलंबिया, दक्षिण अमेरिका से लौटा था। मैं कुछ संन्यासियों के व्यवहार से तंग आ चुका था। मैं सब कुछ बेचकर राशि दान कर देने का प्रस्ताव आश्रम समिति में पारित कराने वाला था, 'मुझे यह आश्रम नहीं चाहिए। अगर आप लोगों को चाहिए तो आप ही इसे चलाएँ।' उसी रात गुरुजी आये और कहा, 'आश्रम के सामने जो पहाड़ी है, तुम्हें खरीद लेनी चाहिए।' यह गंगा दर्शन है, जहाँ नया आश्रम बन रहा है

और जहाँ अन्तरराष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र की स्थापना होगी। मुझे उस समय पता ही नहीं था कि इसका मतलब क्या है। मैं जब उस जमीन को खरीदने चला तो वह बहुत महंगी थी और उसका मालिक उसे बेचना ही नहीं चाहता था। उसने कहा, 'पहली बात तो यह पुश्तैनी जायदाद है, इसलिए मैं इसे नहीं बेचूँगा। दूसरी बात, यह एक ऐतिहासिक स्थान है, इसलिए मैं इसे बेच भी नहीं सकता।' सरकार ने आपत्ति की, पुरातत्व विभाग ने आपत्ति की और दस्तावेज़ इधर-उधर घूमते रहे। भारतीय संसद में भी इस पर चर्चा हुई कि क्या इसे मंजूरी दे दी जाए। आखिर में मैंने वह जमीन बहुत सस्ते में खरीदी!

उस जमीन के साथ कुछ और समस्याएँ भी थीं। एक दिन मैंने सोचा, 'अगर यही सब परेशानियाँ होने वाली हैं और इनके लिए मुझे कचहरी जाना पड़ेगा तो यह सब मुझे नहीं चाहिए। मैं जमीन के लिए अदालत क्यों जाऊँ? वे सभी भाड़ में जाएँ।' मैंने संन्यासियों से कहा, 'देखो, मैं कोर्ट-कचहरी नहीं जाने वाला। अगर सरकारी विभाग बोलते हैं कि यह जमीन बेची नहीं जा सकती, इस पर इमारतें नहीं बन सकतीं तो मैं इस पूरी योजना को रद्द कर दूँगा।' मुझे रुपये-पैसों से कोई मतलब नहीं। उसी रात फिर झलक मिली। गुरुजी ने सभी भवनों का पूरा नक्शा दे डाला। जो भी भवन वहाँ बनेंगे, उन्हें मैं पहले ही देख चुका हूँ। आप इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मैंने सभी भवनों को देखा है, वे किस प्रकार से बनेंगे, उनमें किस तरह के कमरे होंगे। स्वामीजी ने आकर कहा, 'यह रहा तुम्हारा गंगा दर्शन,' और सब कुछ वैसे ही साकार होने लगा।

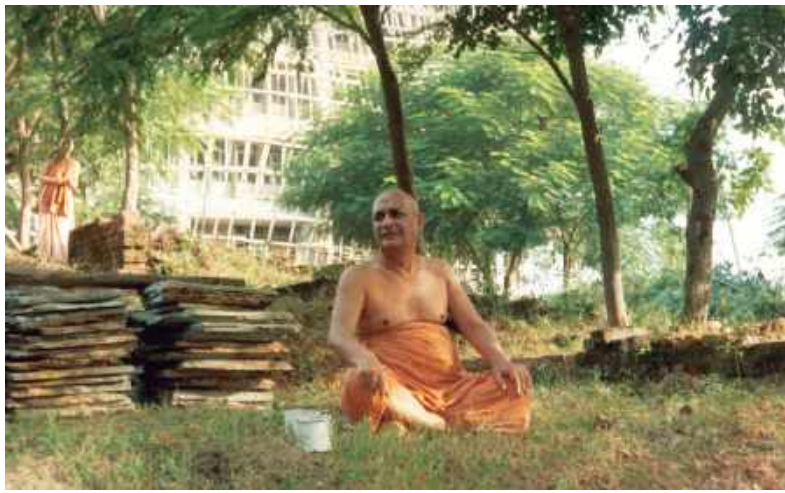

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

रिखियापीठ सत्संग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए) एवं कार्यक्रम

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं
- स्वस्थ जीवन हेतु *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर *यौगिक जीवनशैली साधना* का कार्यक्रम उपलब्ध है

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
फरवरी 8–14	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 3–9	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
मार्च 22–28	*प्रत्याहार एवं धारणा प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

मार्च 1–अप्रैल 30	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)*
नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जनवरी 28– फरवरी 2	*बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस*
जून 25–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक एकादशी	*भगवद् गीता पाठ*
प्रत्येक पूर्णिमा	*सुन्दरकाण्ड पाठ*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*